कोहरे में डूबा शहर

(गीत संग्रह)

डा. नरेश कात्यायन

'कोहरे में डूबा शहर' एक नये डॉ. नरेश कात्यायन से परिचय कराता है। मुख्यतः ओज एवं वीर रस के कवि के इस 'गीत—संग्रह' की रचनायें लीक से हटकर प्रेम की अजस्र धाराओं वाले निर्झर के रूप में झरती है। वे हृदय को गहराइयों तक आंदोलित करती है। प्रेयसी द्वारा गीतों को अधरों से छू देने के बदले कवि उसे व्यथित भाल, अश्रु की माल एवं तृप्ति के सुमन अर्पित करके, कल्पना—रथ पर बैठ सपनों में आने को तैयार है। वह पाषाण को प्यार की भाषा की समझ न होने, नादान द्वारा फूलों की गरिमा न रखे जाने तथा आँधियों को बाँसुरी का स्वर न भाने की बात कहकर प्रेमी को संभलने की सीख देता है। असीमित आकाश के सामने होने के बावजूद उसका मन पिंजरे का सुआ ही है। वह अपने यायावरी सपनों की दुनिया में भी प्रियतमा को हर पल पास देखना चाहता है। वह सुधियों में पोर—पोर डूबा है।

डॉ. नरेश ने इस संग्रह के गीतों में बड़े ही सरल शब्दों में भावों की गहरी पृष्ठभूमि को समेटा है। "बाँहों में फूलों से भर लें पल—छिन/भूल जायें कांटों से बीत चुके दिन" कहकर उन्होंने कामनाओं को पुष्ट व्यवहारिकता के धरातल पर खड़ा कर दिया है। आस—पास के नये संसार में वे स्नेह के अक्षर चुके हुये तथा संवेदनाओं को पत्थर जैसा पाते हैं। नभ पर घृणा के मेघ छाये हुये हैं। दर्पणों पर धूल तो जमी ही है, चेहरे भी घिनौने हैं। ऐसे में भी डॉ. नरेश आशावादी बने रहकर गाते हैं—"फिर जगेगा बाँसुरी से गीत/फिर बहेगा वायु में संगीत/शब्द का आकाश मत खोना/सूर्य का विश्वास मत खोना" निश्चित ही पाठक इस संग्रह के गीतों की भाव—धरा से अपने को जोड़कर एक लंबे समय तक इनका रसास्वादन करते रहेंगे।

- यू.के.एस. चौहान

मनोरंजन कर आयुक्त, उ.प्र.,लखनऊ

कोहरे में डूबा शहर

(गीत–संग्रह)

डॉ. नरेश कात्यायन

२०१, राजकीय कालोनी, सेक्टर – २१
इन्दिरा नगर, लखनऊ – १६
दूरभाष : ७१५८४०

पुस्तक का प्रकाशन उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान की प्रकाशन अनुदान योजना के अन्तर्गत किया गया है।

कोहरे में डूबा शहर
(गीत–संग्रह)

रचनाकार
डॉ नरेश कात्यायन

प्रथम संस्करण
२००२

प्रतियाँ
१०००

मूल्य
रु. ११० / –

कम्पोजिंग एवं सेटिंग
इको बिजनेस सेन्टर
४०, लेखराज गोल्ड, मुंशीपुलिया
इन्दिरा नगर, लखनऊ

मुद्रक
क्रियेटिव ग्रैफिक्स
हिमांशु सदन, ५ पार्क रोड, लखनऊ। फोन : २३८५०६

समर्पण

अपनी प्रियतमा

को

जिसने

मुझे

मेरे होने का

अहसास कराया

पुरोवाक्

❑केशरी नाथ त्रिपाठी
अध्यक्ष, विधान सभा, उ०प्र०

श्री नरेश कात्यायन प्रमुखतयः ओज एवं वीर रस के कवि हैं। ओज उनका तेवर और चुनौतियां उनका सामान्य कलेवर हैं। यद्यपि "कोहरे में डूबा शहर" का प्रवाह पाठक को कई दिशाओं और विधाओं में भ्रमण कराता है फिर भी उनके मूल तेवर से अछूता नहीं है। लयात्मकता काव्य का गुण है जो इस काव्य संग्रह में प्रचुरता से उपलब्ध है। पंक्तियाँ पढ़ते –पढ़ते स्वयं ही गुनगुनाहट में परिवर्तित हो जाती हैं। कात्यायन जी ने बिम्बों का समुचित और सुन्दर प्रयोग कर बड़े ही प्रभावात्मक रुप में अपनी भावनाओं का सम्प्रेषण अपनी रचनाओं में किया हैं। शब्दों के साथ आँख मिचौली करती पंक्तियां हृदय को दूर–दूर तक छू जाती हैं। भावनाओं के प्राबल्य ने शब्द शिल्प के साथ ही साथ रचनाओं को ओज और माधुर्य भी प्रदान किया है। झील की तरंगों की उछाल एक ही वस्तु के अनेकानेक प्रतिबिम्ब प्रदर्शित करती है और यदि रचनाओं की विषय वस्तु में विविधता हो तो तरंगित प्रतिबिम्बों की मनोहरता में स्वाभाविक वृद्धि हो जाती है। इस मनोहर छटा का दर्शन हम श्री नरेश कात्यायन की इस कृति में बार–बार करते हैं।
कोहरे में डूबा शहर प्रीति–सिंचित मन को ध्वनित करने के साथ–साथ पीड़ा को गुंजायमान करते हुए पाठकों का आह्वान करता है–

"जाग वंशी के स्वरों के सूर्य
शोर का तम गहनतम होने लगा।।"

* * * * *

"जाग मंदिर की गुफा के देव
पत्थरों का फिर जनम होने लगा।।"

(जाग वंशी के स्वरों के सूर्य)

जागरण के लिए कवि आवाज देता है:–

"जागरण के गीत मत सोना
नींद के पहरे हुए हैं लोग।"

आवाहन कर्म के लिए हो, कवि की यही कामना है:–

"चाहिए तम की ख़िलाफत के लिए
रौशनी का विप्लवी तेवर नया
फिर उठे क्षिति से, समूचे व्योम में
जागरण का झनझनाता स्वर नया।।"

(जाग वंशी के स्वरों के सूर्य)

कर्म के बाद विश्रांति चाहिए और उन क्षणों में प्रीति गुनगुनाती है:–

"मेरे सर की दोपहरी को तुमने थाम लिया
तब से तन आँचल–आँचल है कोई क्या जाने।।"

* * * * *

मौन निमंत्रण ने जबसे बाँधा है प्राणों को
यह जीवन पायल–पायल है कोई क्या जाने।।

(मन पागल है)

पायल के घुंघरुओं का धर्म है रुनझुन करना। शब्दों की रुनझुनाहट कवि की इन पंक्तियों में स्वरित है:–

"तुम आँखों में भर लेना बिखरे स्वप्न
मिलन की आस, अनबुझी प्यास
रैन भर गीत जगाऊँगा।"

* * * * *

"तुम अधरों से छू देना मेरा गीत
व्यथित सा भाल, अश्रु की माल
तृप्ति के सुमन चढ़ाऊँगा।"

(रैन भर गीत जगाऊँगा)

कवि को प्रीति में तृप्ति का आभास नहीं होता। इसी से वह कहता है:–

"रोज–रोज सपने में आना
मिलने से पहले खो जाना
शायद तुम्हें भला लगता हो।"

(तुम्हें भला लगता हो)

फिर भी वह प्रीति को जीवन का आधार मान कर चलता है। इसकी

आकांक्षा उसे आशावादी स्वर देती है:–

"मुरझाये फूलों में फिर से लाली भर दी"

(ऐसा बन्धन बाँधा है)

* * * * *

"मेरी आँखों में असंख्यों दीप आशा के जले हैं"

* * * * *

"रक्त के कण –कण प्रणय की ज्योत्सनाओं में पले हैं"

(मैं अकेला हूँ नहीं)

* * * * *

"तेरी सुधियों का हाथ थाम
जीवन के गिरि पर चढ़ता है
तुझको क्या ज्ञात नहीं, यह मन
उपनिषद् प्रीति का पढ़ता है।"

(अपने प्रियतम से बोल ज़रा)

* * * * *

"लिख रहा आवाहनों के मंत्र
तुम कहीं भी हो तुम्हें आना पड़ेगा।"

(आवाहनों के मंत्र)

जब प्रीति स्वप्न हो जाती है तो पीड़ा जन्म लेती है। उसकी अनुभूति मन को विभिन्न रुपों में होती है। आशा–निराशा, मन की अकुलाहट आदि उसी के प्रतिविम्ब हैं। इन स्थितियों में व्यक्ति में जो प्रतिक्रिया होती है उसका बहुत सुन्दर, सजीव, हृदय को छू लेने वाला शब्दांकन नरेश जी की कई रचनाओं में मिलता है:–

"सिरहाने सपनों का आकाश धरे
मेरा पीड़ा सोती है, सोने दो।"

(पीड़ा सोती है)

*****

"मेरा कोई अनुबन्ध न स्वीकारो
जो लगा दिये थे मेरी श्वासों पर
वो अनुमोदित प्रतिबन्ध न स्वीकारो"

(प्रतिबन्ध न स्वीकारो)

* * * * *

"है यही वैराग्य, तो वैराग्य लेकर क्या करोगे
प्रीति के कर में निराशा, स्वप्न के घर में कुहासा।"

(याचना रक्खो कुँआरी)

* * * * *

"आखिर कब तक छलें स्वयं को शकुनि दाँव से हम
एक ओर है क्रोध प्यार का, दूजी ओर अहम्।"

(नैना भर-भर आते हैं)

* * * * *

"अपनापन सा कुछ मिला किन्तु
अपना संसार नहीं पाया।"

(नहीं पाया प्राणों का प्यार)

क्रोध, अहम् आदि मनुष्य के स्वभाव के अंग है। एकाकीपन कभी मनुष्य को चिन्तन के लिए बाध्य करता है तो कभी दिलासा देते हुए स्मृतियों को जगा जाता है:—

"लेकिन कुछ गीली सी पीड़ा की
पलकों को एक छुअन छेड़ गयी।"

* * * * *

अलसाये तट को सपनीली सी
यादों की एक पवन छेड़ गयी।"

(एक किरण)

"मन कहाँ लगाये तब कोई
जब हर मेला एकान्त हुआ।"

* * * * *

"जो सूनापन हर लेते थे उन उद्‌गारों का क्या होगा
जो प्रीति नहीं दे सकी कभी, उन उपहारों का क्या होगा"

(उन त्यौहारों का क्या होगा)

पर निराश व्यक्ति का चिन्तन उत्प्रेरक नहीं हो सकता। उसकी संवेदनशीलता नकारात्मक होती है। तब तलाश होती है जीवन में ओज एवं प्रवाह की जिसके लिए चाहिए आस्था, समर्पण, आशा और माधुर्य।

इन सभी की झलक हमें प्रस्तुत रचना संग्रह में मिलती है, यथा:–

"तुम्हारी किरणों से सुस्नात
तमिस्रा पर करती प्रतिघात
साधना ने यह जाना नहीं
किस तरह बीती काली रात
कहाँ है ऊषा का श्रृंगार"

* * * * *

"कहाँ है अन्तर का उजियार"

* * * * *

"कहाँ वह नूपुर की झंकार
कौन वह गन्धित पुष्पाकार।"

(जिसे सौंपा है मेरा प्यार)

* * * * *

"मित्र यह गायन तुम्हारा, आर्त स्वर का रुप लेगा
यह निठुर पाषाण तुमको कर अकिंचन झील देगा
गति तुम्हारी शान्त होगी, लय तुम्हारी मौन होगी
सिन्धु तक बहना तुम्हारा स्वप्न यह साथी मिटेगा।
तत्थ्य हैं सारे उजागर
मत झरो अब स्वप्न निर्झर।"

(स्वप्न निर्झर)

* * * * *

"मेरी आँखों को अश्रु दिए,मैं उपकृत हूँ
साँसों को कोई भी सम्बन्ध न दे पाये"

* * * * *

"तुमने मेरे हर सूने पन को आहट दी
लेकिन आहट को कोई छन्द न दे पाये"

* * * * *

"क्षण–क्षण भ्रम को अपना सानिध्य दिया तुमने
पर पाँवों को कोई सौगन्ध न दे पाये।"

(न दे पाये)

संवेदना का आवाहन करने का एक प्रयास यह भी कि संवेदनहीनता के परिणाम से कवि पाठक को अवगत करा दे। यह दायित्व नरेश कात्यायन ने बहुत प्रभावी ढ़ंग से निभाया है:—

"बेच कर संवेदना के गीत
शहर का अस्तित्व फिर से सो गया"

* * * * *

"सोखकर पीयूष धरती का
सूर्य का स्वामित्व फिर से सो गया।"

* * * * *

"फाड़ कर भ्रातत्व के प्रस्ताव
निर्दयी मनुजत्व फिर से सो गया"

* * * * *

"पोंछ करके प्रीति का सिन्दूर
शपथ का अमरत्व फिर से सो गया।"

(फिर से सो गया)

या फिर :—

"चुक गए है स्नेह के अक्षर
हो गई संवेदना पत्थर
किस नये संसार में हम आ गए।"

(हो गई संवेदना पत्थर)

शब्द और भाव का अद्‌भुत समन्वय और भाषा का माधुर्य नरेश कात्यायन की लगभग सभी रचनाओं में मिलता है:—

"धारा पर लिख डालें, सांसों के गीत
धड़कन की वंशी से भर दें संगीत
तोड़ दे दिशाओं की लौह श्रृंखलायें
आगत के स्वागत में आरती सजायें
सुधियां सब दीप बनें पूजा के थाल की।
कर लें अगवानी नये साल की।"

(अगवानी नये साल की)

* * * * *

"लजवन्ती पलकों पर मदिरा का भार है
दैहिक लिप्साओं में जलता श्रृंगार है
थोथे सम्बोधन हैं झूठों के देश में
फिरती दुर्घटनायें नूतन परिवेश में
सूख गए नीरज हैं सुविधा की झील के
गया वर्ष तोड़ गया, पत्थर कुछ मील के।"

(गया वर्ष)

मनुष्य असमंजस की स्थिति में भी डोलता है तब उसके अंतःकरण में कभी–कभी भय जन्म लेता हैः–

"वह कदम्ब के पेड़, नीम की झुकी–झुकी डालें
एक अजाना भय अपने अन्तस्थल में पालें
मौसम का क्या दोष विहग जो मौन दीखते हैं
जाने कौन चल रहा है यह जहरीली चालें।"

(गर्म हवा डोली)

यदि ऐसे में कवि का मन निराश हो जाय तो समाज का मार्ग दर्शन वह कैसे करेगा? इसीलिए नरेश कात्यायन ने आशा के स्वरों को भी अपनी रचनाओं में प्रचुरता से पिरोया हैः–

"चातक लगा पुकार कि फिर से स्वाति मेघ छाये
जो धरती को जीवन का आश्वासन दे जाये
अभिमानी मुँह जोर हवा के दावे कर झूठे
विकट तपन में घहरा करके अमृत बरसाये।"

(गर्म हवा डोली)

* * * * *

"सूर्य का विश्वास मत खोना
शिशिर का आभास मत खोना
यह समय की वंचना का रूप
फिर खिलेगी खिलखिलाकर धूप
सत्य का मधुमास मत खोना"

(सूर्य का विश्वास)

इस रचना संग्रह की अधिकांश रचनायें प्रीति पर केन्द्रित हैं उनमें विविधता है। कभी ऐसा लगता है कि दर्द भरे दिल का मौन आँसू के वंशजों से शब्दों में मुखरित होकर अपनी व्यथा–कथा कह रहा है तो कहीं अनबोली किरण अलसाये तट पर सपनीली यादों के पवन को छेड़ती है। इन रचनाओं में कवि का रचना सामर्थ्य पूरी क्षमता के साथ उभरा है।

गीत संग्रह की भाषा परिमार्जित खड़ी बोली है। भावों की संप्रेषणीयता ने अभिव्यक्ति को अत्यंत सरल एवं बोधगम्य बना दिया है। पारम्परिकता का निर्वहन और बुनावट एवं कत्थ्य की नवीनता ने इस गीत संग्रह को विशिष्ट स्वरूप दिया है। पाठक इस गीत संग्रह के माध्यम से नरेश कात्यायन के कवि के उस रूप को भी देख सकेंगे जो कवि मंच से सर्वथा भिन्न है।

विश्वास है कि "कोहरे में डूबा शहर" गीत संग्रह की रचनायें पाठकों को पसन्द आयेंगी और हिन्दी साहित्य जगत में इस संग्रह का स्वागत होगा। मेरा अमित आशीष।

❑ ६ माल एवेन्यू, लखनऊ

अपनी बात

आत्माभिव्यक्ति की 'गीत' सबसे समर्थ विधा है। मैं जो दूसरों से कह नहीं पाया, अपने गीतों से कह दिया। अपनी पीड़ा, प्यार, खुशी, दुःख और अभाव। मेरे गीत इन सभी भावों के आश्रयदाता हैं। जब जैसा मन बना, लिखा। केवल लिखने के लिए कभी नहीं लिखा। आग्रहपूर्ण लेखन मेरा स्वभाव नहीं। मंच पर वीर रस के कवि के रूप में पहचान बनी। मैं तो मात्र कविता के प्रति, हिन्दी के प्रति सहज आस्था संजोये पूरी ईमानदारी से समर्पित हूँ।

देश हो या विदेश, हिन्दी भाषी क्षेत्र हो या अहिंदी भाषी जहाँ भी गया, हिन्दी की गरिमा स्थापित करने का प्रयास किया। वीर रस की कविताओं से मिली तालियों के बीच मेरे अकेलेपन ने जब भी स्वयं से बात की कुछ नया अंकुरित हुआ। कोई गीत जन्मा। मेरे गीत मेरी अनिर्वचनीय पीड़ाओं के साक्षी हैं।

'कोहरे में डूबा शहर' आपको सौंप रहा हूँ। इस नगर में पीड़ा भी है, प्यार भी, आशा और निराशा के झूले भी। शान्ति का सामगान और क्रान्ति का उद्घोष भी। आपकी दृष्टि इसे जैसा रस प्रदान करेगी वैसा भाव दृश्य उपस्थित होगा।

यह शहर कोहरे में भले ही डूबा हो पर यवनिका के पीछे का सम्बल मुझे एक प्रकाशदीप की तरह आलोकित कर रहा है। यदि उसे स्मरण न करूँ तो इन गीतों के साथ न्याय नहीं कर पाऊँगा। मेरी श्रद्धा का प्रथम स्तवक श्री केशरी नाथ त्रिपाठी के श्री चरणों में अर्पित है जिनके आशीर्वाद से मेरी कविता ऊर्जावन्त है।

अग्रज श्री सुधीर निगम, दादा शिशुपाल सिंह 'निर्धन', डॉ. कौशलेन्द्र पाण्डेय, श्री रवीन्द्र शुक्ल 'रवि', श्री उमेश कुमार सिंह चौहान, श्री दिनेश चन्द्र अवस्थी, दादा श्री चन्द्रशेखर मिश्र,

बड़े भाई डॉ. उर्मिलेश, श्री रामगोपाल मिश्र, श्री विश्वनाथ द्विवेदी, श्री शिवओम 'अम्बर' एवं डॉ. सन्तोष पाण्डेय के स्नेह का आभारी हूँ। डॉ. आमिर रियाज़, अनंत प्रकाश तिवारी, घनानन्द पाण्डेय 'मेघ', पवन बाथम, कमलेश शर्मा, फारुक़ 'सरल' प्रमोद तिवारी, डॉ. मदन तिवारी, विनोद श्रीवास्तव, डॉ. जमील राठी, कमलेश 'मृदु', उष्मान सिद्दीकी, डॉ. धरम सिंह, मंगल सिंह 'मंगल' और अनेक ऐसे मित्र जिनके नाम मेरे जीवन में महत्वपूर्ण हैं सभी के अनुराग और प्रोत्साहन के प्रति मेरी कृतज्ञता।

अपनी जीवन संगिनी कवयित्री पुष्पा 'सुमन' को क्या आभार व्यक्त करूँ उसके बिना तो मेरे गीत प्राणहीन हैं। अपने सभी मित्रों, हितचिन्तकों तथा उन्हें भी जो दूर रहकर भी मुझे कुछ आभास करा गये मेरी सादर विनम्रता अर्पित है।

अपनी दोनो पुत्रियों, दिव्या और काव्या तथा पुत्र राकेश के प्रति आभार जिनके समय से समय लेकर मैंने यह गीत रचे। यदि मेरी यह गीत रचना प्रकाश में न आती तो एक अधूरापन एक खालीपन सालता रहता।

'कोहरे में डूबा शहर' अपने स्नेहिल पाठक हृदय से प्रकाश की अपेक्षा करता है। आपकी सदाशयता इसकी थाती है। इसे अपनाइयेगा, अपना प्यार दीजिये यदि कहीं कुछ अच्छा लगे तो मुझे भी अपने उस स्पन्दन से अवगत कराइयेगा।

डॉ. नरेश कात्यायन

२०१, राजकीय कालोनी,
सेक्टर–२१, इंदिरा नगर,
लखनऊ – १६

अनुक्रम

माँ तुम्हारी दया का विश्वास

दूर कब होगा जननि,
घर से अभावों का अंधेरा,
मैं तुम्हारी दया के
विश्वास में बैठा हुआ हूँ।

यह मेरा सर्वस्व, यह मन, प्राण है तेरी शरण में,
दीन-- दुखियों को मिला कल्याण है तेरी शरण मे।
माँ हमारा संकटों से त्राण है तेरी शरण में,

मै तुम्हारी प्रीति के
आभास में बैठा हुआ हूँ ।।

क्यों जननि अब तक तुम्हारी रौशनी आई नहीं,
उलझनों से मुक्ति मैंने किसलिए पाई नहीं।
क्यों अभी ऋण शीस पर है, अम्ब क्यों छाई उदासी,

मैं तुम्हारे द्वार के ही
पास में बैठा हुआ हूँ।।

शारदे माँ अब अधिक सुत की परीक्षा लो नहीं,
इन अभावों को मिटादो, अब कोई दुःख दो नहीं।
कीर्ति, कविता,प्यार, वैभव, शांति, सुख तुमसे मिलेगा,

शारदे मैं दैन्य के
आकाश में बैठा हुआ हूँ।।

अब न हो सुत की उपेक्षा, अब तो केवल प्यार दो माँ,
मेरे सारे दोष नाशो, अब सुखी संसार दो माँ।
भक्ति को मेरी अभय दो, इन अभावों पर विजय दो,

मैं तेरी पग धूलि के
मधुमास में बैठा हुआ हूँ।
मैं तुम्हारी दया के
विश्वास में बैठा हुआ हूँ।।

* * *

जननि अधिकार मेरा

माँ तुम्हारे क्यों नहीं खुलते दया के द्वार,
क्यों अँधेरों से घिरा परिवार मेरा।
आपको जब सौंप दी है ज़िन्दगी यह
क्यों अभावों में पले संसार मेरा।।

तेरे बच्चे क्यों घिरे संताप में हैं?
क्यों जननि यह प्राण मेरे ताप में हैं?
भक्त के दुःख नाशिनी अब यह बतादो,
क्यों मेरे पल छिन अभी तक शाप में हैं?

क्यों नहीं होता हमारा कष्ट से उद्धार?
क्यों नहीं तुमसे मिला है प्यार मेरा?

मैं हूँ अपराधी, तुम्हारा लाल हूँ माँ,
आज बिन तेरी कृपा बेहाल हूँ माँ।
पाप नाशिनि अम्बिके अब तो दया कर,
मैं तुम्हारी प्रीति बिन कंगाल हूँ माँ।।

हे दयामयि जीव का कुछ कीजिए उपकार,
दीजिये अब तो जननि अधिकार मेरा।।

देख ममतामयि, मैं तेरा ही तनय हूँ,
बस तेरे बल के सहारे मैं अभय हूँ।
किंतु यह अपमान, यह दारुण व्यथायें,
अर्थ से सूना किराये का निलय हूँ।।

माँ नहीं क्यों दे रही तू प्यार का आधार,
यह उलहना ही सही स्वीकार मेरा।
क्यों अँधेरों में घिरा परिवार मेरा।।

* * *

कोहरे में डूबा शहर

आज कल कोहरे में डूबा है शहर
बन्द कमरों में उतरती भोर है।
ज़िन्दगी कम्बल, रजाई चाय है,
गर्म चर्चायें छिड़ी अखबार पर।
संचरण का गीत अब निरुपाय है,
एक कर्फ्यू सा लगा हर द्वार पर।।

सूर्य भी भयभीत दुबका है कहीं,
व्योम भी तो दृष्टिगत होता नहीं,
एक गहरा श्वेत बर्फीला धुआँ,
अब किसी के तेज को ढ़ोता नहीं।।

दो क़दम से लौट आती है नज़र,
यह छलावा भी बड़ा मुंहजोर है।।

दोपहर है और धुँधली सूरतें,
बन न पातीं देह की परछाइयाँ।
चहचहाते पंछियों के नीड़ से,
हैं मुदित बस एक दो अमराइयाँ।।

सूर्य अब निकला किसी बीमार सा,
बादलों की चादरें ओढ़े हुए।
लग रहा है उम्र इसने काट दी,
साथ अपनी ज्योति का छोड़े हुए।।

उठ रही जन–सिंधु में हल्की लहर,
और सड़कों ने किया कुछ शोर है।

शाम की अब सुरमई चादर नहीं,
आजकल हर शाम तम के नाम है।
सूर्य की असहायता के दण्ड को,
भोगता इस शहर का हर धाम है।।

चाहिए तम की ख़िलाफ़त के लिए,
रौशनी का विप्लवी तेवर नया,
फिर उठे क्षिति से, समूचे व्योम में,
जागरण का झनझनाता स्वर नया।।

चेतना में चहल–कदमी दीखती,
सुगबुगाहट क्रांति की हर ओर है।
आजकल कोहरे में डूबा है शहर,
बन्द कमरों में उतरती भोर है।।

* * *

जाग वंशी के स्वरों के सूर्य

जाग वंशी के स्वरों के सूर्य,
शोर का तम गहनतम होने लगा।।

शान्ति का स्यन्दन हुआ गतिहीन,
क्रान्ति का उद्योग भी है बन्द।
हर दिशा में ताण्डव करता दिखे,
एक कुत्सित स्वार्थ का आनन्द।।

जाग श्रम की साधना के मंत्र,
भोग का वैभव परम होने लगा।।

दर्प का गज रौंदता उद्यान,
प्रीति का घायल हुआ है कीर।
स्वार्थ के दावानलों से क्षुब्धा,
जल गया करुणा नदी का नीर।।

जाग मंदिर की गुफा के देव,
पत्थरों का फिर जनम होने लगा।।

एक छोटी कामना इन्सान,
खा गया मनुजत्व का नवनीत।
है क्षुधा अब भी दृगों में शेष,
पी न जाये भावना के गीत।।

जाग अन्तर व्योम के ध्रुव सत्य,
शब्द का विस्तार कम होने लगा।।

* * *

कवि होना तो बड़ी बात है

अपने प्राणों की पीड़ायें
कुछ दुनियाँ की दीन दशायें
अपने भावों के शिखरों से
झरता बस इतना प्रपात है।
कवि होना तो बड़ी बात है।।

कवि तो इस विस्तृत समष्टि को
व्यष्टि बनाने में समर्थ है।
जिसकी कृति से लघुतम को भी
मिलता अमित असीम अर्थ है।।

अपनी तो सीमा में केवल
थोड़े शब्दों की जमात है।
कवि होना तो बड़ी बात है।।

कवि तो अपनी स्वर वीणा पर
अनहद साध लिया करता है।
कवि तो अपने शब्द शिल्प में
प्रभु को बाँध लिया करता है।।

अपना तो जग के बंधन से
बंधा–बिंधा हर पोर गात है।
कवि होना तो बड़ी बात है।।

कवि तो अपने शब्द सूर्य से
तम का नाश किया करता है।
स्थिर रहकर भी सचराचर में
नित्य प्रवास किया करता है।।

अपनी तो आलोक परिधि में
बंध न सकी कज्जला रात है।
कवि होना तो बड़ी बात है।।

कवि संकल्प शक्ति का रथ है
नव्य सृजन की अभिलाषा है।
मानवता का अमृत घाट है
कवि तो सच की परिभाषा है।।

कवि के महासिन्धु के आगे
छोटे सर की क्या बिसात है।
कवि होना तो बड़ी बात है।।

कवि अपने यथार्थ के पथ पर
नूतन सृष्टि रचा करता है।
आड़ी–तिरछी रेखाओं में
नयी प्रकृति के रंग भरता है।।

कवि तो कलित कल्पनाओं के
आँगन में उतरा प्रभात है।
कवि होना तो बड़ी बात है।।

जब सो जाता घोष ज्ञान का
कवि तब भी जागृत रहता है।
जग का संवेदन सूखे पर
कवि में क्षीर–सिन्धु बहता है।।

तनिक ताप से अपने मन का
कुम्हला जाता वारिजात है।
कवि होना तो बड़ी बात है।।

कवि पीड़ा की उल्काओं को
अपने अन्तस् पर सहता है।
दहता है भीतर–भीतर पर
व्यथा दूसरों की कहता है।।

अपनी तो सामान्य जिन्दगी
कवि होना तो करामात है।
कवि होना तो बड़ी बात है।।

कवि ने कितने युग रच डाले
पत्थर को भी नीर दिया है।
संस्कृति की आकुल कृष्णा को
अपने स्वर का चीर दिया है।।

अपनी तो मनसिज याचकता
कवि होना तो परिजात है।
कवि होना तो बड़ी बात है।।

* * *

संचरण के गीत मत रुकना

संचरण के गीत मत रुकना,
आजकल ठहरे हुए हैं लोग।

है इन्हें विश्राम का अभ्यास,
पाँव में बाँधे हुए इतिहास।
भूमि के पर्यंक में विश्रान्त,
शीश पर ओढ़े हुए आकाश।।

आचरण के गीत मत थमना,
दृष्टि से बहरे हुए हैं लोग।।

नींद का वातावरण चहुँओर।
टूटता है काँच जैसा शोर।
है वृथा आलोक का अनुदान,
थक गयी है चहचहाती भोर।।

जागरण के गीत मत सोना,
नींद के पहरे हुए हैं लोग।।

हर तरफ हैं सिंधु का विस्तार,
तिर रहे हैं नीर में पतवार।
नाव के टूटे हुए हैं पाट,
चढ़ रहा है हर लहर में ज्वार।।

संतरण के गीत मत बहना,
डूब कर गहरे हुए हैं लोग।।

* * *

दीप हिन्दी का धरें

राष्ट्र गौरव के निलय में,
दीप हिन्दी का धरें।।

टूटते से आत्मबल हैं, कांपती सी कामनायें।
हिमाच्छादित हो रही हैं, संस्कृति की प्रार्थनायें।।
वर्जना के इस प्रलय में,
दीप हिन्दी का धरें।।

लोभ के परयंक में हैं, चेतना की कुल ऋचायें।
झुक गयीं आतंक के आगे, सुयश शोभित शिखायें।।
शांति युग के इस अनय में,
दीप हिन्दी का धरें।।

आत्म केन्द्रित हो गयी हैं, प्रीति की मादक हवायें।
हो गयीं फिर से उनींदी, ज्योति की संभावनायें।।
तमस् के विस्तृत वलय में,
दीप हिन्दी का धरें।।

फिर सुयश का अंशुमाली, अमृतमय किरणें बिखेरे।
विश्व गुरू के गाँव में, उतरें पुनः स्वर्णिम सवेरे।।
चिर प्रतीक्षित इस समय में,
दीप हिन्दी का धरें।।

* * *

हिन्दी का गौरव गान रहे

अपनी धरती अपना अम्बर,
अम्बर में नव दिनमान रहे।
अपने भारत के अधरों पर,
हिन्दी का गौरव गान रहे।।

प्रत्येक राष्ट्र की आँखों में,
यश की अभिलाषा होती है,
अपना, ध्वज, अपनी संप्रभुता,
और अपनी भाषा होती है।
अपनी भाषा का स्वाभिमान,
संस्कृति का पोषक होता है।
अपनी भाषा का कीर्ति केतु,
जय का उद्घोषक होता है।।
अपनी वाणी की सत्ता का,
सुरभित, कुसुमित उद्यान रहे।

जिस भाषा को हथियार बना,
हम स्वतंत्रता संग्राम लड़े,
जिस भाषा की छाया में हम,
अपनी गरिमा की ओर बढ़े।
जिसकी ललकारों के आगे,
दुर्दान्त शत्रु थर्राये हैं।
हिन्दी के प्रबल पराक्रम ने
अपने जौहर दिखलाये हैं।

उस महाक्रांति की भाषा का,
स्यंदन सदैव गतिमान रहे।

वह भाषा जिसने भारत की
बिखरी कड़ियों को जोड़ा है।
वह भाषा जिसने दम्भ सदा
पश्चिमी हवा का तोड़ा है।
जिसके अभ्यंतर में प्रदीप्त
दर्शन– चिन्तन का ज्योति–पुंज।
है प्रकृति– पुरुष का योग जहाँ
हैं जहाँ प्रीति के मदिर कुंज।।
उस प्रेम पियूषा हिन्दी का,
जग में सदैव सम्मान रहे।

अपने किसान की कथा बने,
श्रम की अनुगुंजित व्यथा बने।
अन्वेषण का आलोक बने,
वीरों की पावन प्रथा बने।।
हिन्दी की प्रभुता से होगा,
अपने भारत का उच्च भाल।
हिन्दी की प्राण प्रतिष्ठा से,
माँ का मन्दिर होगा विशाल।।
हिन्दी की महिमा से मंडित,
अपना यह हिन्दुस्तान रहे।
अपने भारत के अधारों पर,
हिन्दी का गौरव गान रहे।।

* * *

घुल गयी है वायु में बेला

घुल गयी है वायु में बेला
चन्दनो तुम होश में रहना।

था तुम्हें निज गन्ध पर अभिमान,
कर न पाये और का सम्मान।
और भी हैं ख़ुश्बुओं के रंग,
दम्भ को यह हो न पाया ज्ञान।।

तुम बहुत कुछ हो, न सब कुछ हो,
बेवजह मत जोश में रहना।
चन्दनो तुम होश में रहना।।

छा गया है बाग में ऋतुराज,
बज रहा है मस्तियों का साज़।
हर कली पर है अनोखा रुप,
शीश पर मधुमास का है ताज़।

पा गये हो गोद, धरती की,
पतझरों आगोश में रहना।
चन्दनो तुम होश में रहना।।

कोयलों को मिल रहे न्यौते,
आम के घर में बजीं शहनाइयां।
मौर बंधने लग गये हर ओर,
वक़्त की घटने लगीं परछाइयाँ।।

पुज रहे हैं आम के पत्तो,
मत किसी अफ़सोस में रहना।
चन्दनो तुम होश में रहना।।

जो न बदलेगा समय के साथ,
वक़्त उसके तोड़ देगा हाथ।
दर्प का होता यही परिणाम,
एक दिन झुकता सभी का माथ।।

यह सहज सा सत्य मेरे मीत,
हर समय सन्तोष में रहना।
चन्दनो तुम होश में रहना।।

* * *

जंगलों में लग गई है आग

जंगलों में लग गई है आग,
बादलों का कौन अब स्वागत करे।

मौत का भय है मृगों में व्याप्त,
पक्षियों का रुदन है चहुँओर।
जल रहे हैं पादपों के वंश,
अब हवा भी हो गई मुँह जोर।।

कौन अब किसके लिए सोचे,
कौन अब पर स्वार्थ की हिम्मत करे।।१।।

फिर रहे हैं धुएँ के यमदूत,
घुट रही है बादलों की सांस
बिजलियों से हो नहीं पाता।
यात्रा के मध्य का परिहास।।

राह, भटके पंथियों से मेघ,
सिर्फ अगवानी खड़ा पर्वत करें।।२।।

यह तृषा और तृप्ति का भटकाव,
छल रहा है युगों से इन्सान।
यह असंगति का भयावह रुप,
रच गया किस लोक का भगवान।।

कौन दे इस सृष्टि को युगबोध,
कौन सच को प्रकृति से सहमत करे।।३।।

* * *

खो गया है प्रेम का जलयान

खो गया है प्रेम का जलयान,
सभ्यता के अगम खारे सिंधु में।।

एक विगलित क्रोध का तूफान,
एक तृष्णा की भंवर का मान।
एक प्रभुता की अपरिमित चाह,
वासना के दम्भ का अभिमान।।
एक आन्दोलन समाहित है,
हृदय के गहरे हमारे सिंधु में।।

आत्म हन्ता हो गये सम्बन्ध।
तोड़ सरितायें चली प्रतिबन्ध।
बह गया अपनत्व का अभिप्राय,
ढह गया अनुराग वाला छन्द।।
हर तरफ से मिल रहे निर्भीक,
अति–प्रदूषित कुटिल धारे सिंधु में।।

हो रहा फिर सुर–असुर संग्राम।
फिर वही इतिहास के आयाम।
एक मन्थन चाहिए युग को,
जो बचाये आदमी का नाम।।
इस समय तो गिर रहे चुपचाप,
टूटकर अपदाप तारे सिंधु में।।

* * *

सिर्फ दहना है

त्रिभुज की तीनों भुजायें हैं बराबर,
किसलिये हम किसी को छोटा कहें।।
मौन रहना है भला इस दौर में।।

बन रहे हैं हर तरफ ही कोण परिचित बिंदुओं से,
नियम सारे ही अचानक छोड़कर रेखागणित के।
हो रही निर्मय लज्जित स्वयं की उपवीतिका में,
जा रही संकल्प के घर तोड़कर रेखागणित के।।

नियम परिवर्तित सदा होते रहे हैं,
दोष किस उपबन्ध के सर पर मढ़ें।
दर्द सहना है भला इस दौर में।।

त्रिभुज के भीतर समाहित दीखते हैं वृत कितने,
और सबका केन्द्र है 'र' नाम वाला बिंदु।
परिधियाँ हर वृत्त की अनुक्षण प्रकम्पित हो रही हैं,
किन्तु ठहरा है सदा परिणाम वाला बिंदु।।

यह अयाचित क्रान्ति का संदर्भ,
हर तरफ हर बिंदु से लपटें उठें,
सिर्फ दहना है भला इस दौर में।।

* * *

हो गयी संवेदना पत्थर

चुक गये हैं स्नेह के अक्षर
हो गयी संवेदना पत्थर
किस नये संसार में हम आ गये।
उठ रहा तूफान लिप्सा का,
और हम सहमें घरों में हैं।
मिट रहा है व्योम का विस्तार,
और हम अपने परों में हैं।।

था उड़ानों पर कभी प्रतिबंध,
आज तो हम हो गये निर्बन्ध।
आज भी उड़ने से हम घबरा गये।
किस नये संसार में हम आ गये।

जम गयी है दर्पणों पर धूल,
और चेहरे भी घिनौने हैं।
कामनायें हो गईं गिरि तुल्य,
चेतना के केतु बौने हैं।।

भ्रांतियों के हैं चढ़े तेवर,
संशयों के दायरे में घर।
मेघ नभ पर है घृणा के छा गये।
किस नये संसार में हम आ गये।

खो रही है मनुजता पहचान,
और हम आदर्श झुठलाते।
कर्मनाशा की लहर के साथ,
कण्ठ सारे भैरवी गाते।।

घुल गया पुरवाइयों में तम,
गीत के आंगन दिखे मातम।
हम स्वयं के बोध से कतरा गये।
किस नये संसार में हम आ गये।

ज्योति की आराधना फिर हो
प्रीति का दिनमान फिर निकले।
इस समय के वक्ष से निर्भीक,
क्रांति का अभियान फिर निकले।

फिर मुखर हों आस्था के स्वर।
फिर झरें अनुराग के निर्झर।।
यूं लगे पथ लक्ष्य का हम पा गये।
किस नये संसार में हम आ गये।।

* * *

सूर्य का विश्वास

बादलों से ढक गया आकाश,
फैलता चहुँ ओर तम का पाश।
सूर्य का विश्वास मत खोना।।

भोर से ही दिन लगा बीमार,
कर न पाया रंच भी श्रृंगार।
और फिर बदला हवा ने खेल,
मेघ से करके प्रणय व्यापार।।

भूमि पर करने लगी उत्पात,
आ गयी हेमन्त में बरसात।
शिशिर का आभास मत खोना।।

है कुहासे का घना विस्तार,
एक भ्रम का पास में आधार।
फैलता है दिग्दिगंतों तक,
धूम्र का निस्सीम पारावर ।।

यह समय की वंचना का रूप,
फिर खिलेगी खिल–खिलाकर धूप।
सत्य का मधुमास मत खोना।।

यह असंयत संक्रमण का काल,
पीठ पर बांधे हुए भूचाल।
दिख रहा अभिशप्त सारा व्योम,
प्रीति की सरि में पड़ा शैवाल।।

फिर जगेगा बांसुरी से गीत,
फिर बहेगा वायु में संगीत।
शब्द का आकाश मत खोना।
सूर्य का विश्वास मत खोना।।

* * *

ज्योति की वारांगनायें

आ गयी फ़िर ज्योति की वारांगनायें।
जुड़ रहीं हर ओर शलभों की सभायें।।

पाहुनों के आगमन से पूर्व आयोजन,
बांचने हर घर लगा, नव छन्द सम्मोहन।
गन्ध तिरने लग गयी त्यौहार की।
बाँसुरी बजने लगी मनुहार की।।
आँगनों में नृत्य करती हैं ऋचायें।
आ गई फिर ज्योति की वारांगनायें।।

झूमती है उल्लासित हो, तोतली भाषा।
गोद में है लक्ष्मी के बाल अभिलाषा।।
बज रहे नन्हें पटाखो द्वार पर।
चमकते खद्योत बन्दनवार पर।।
चन्द्र पीकर सो गया अपनी कलायें।
आ गई फिर ज्योति की वारांगनायें।।

क्या हुआ हर चित्र से रिसने लगा है खून।
दीपकों के पत्र का बदला लगे मज़मून।
हो गये सारे पटाखो बम अचानक।
हर तरफ छाने लगा है तम अचानक।।
अपहरण कर ली गयीं सद्भावनायें।
आ गई फिर ज्योति की वारांगनायें।।

* * *

गर्म हवा डोली

पनघट लगे सूखने, ऐसी गर्म हवा डोली।

पाजेबों में फँसे पाँव, थक गये, निराश हुए,
पथ के सभी चिह्न विस्मृत, शापित इतिहास हुए।
हर घट के आकुल अधरों पर पीड़ा उभरी है,
स्वप्न सरसता के, अनचाहे घायल प्यास हुए।।
आँचल हैं बदनाम कि वह बेशर्म हवा डोली।
पनघट लगे सूखने ऐसी गर्म हवा डोली।।

वह कदम्ब के पेड़, नीम की झुकी–झुकी डालें,
एक अजाना भय अपने अन्तस्थल में पालें।
मौसम का क्या दोष, विहग जो मौन दीखते हैं
जाने कौन चल रहा है यह ज़हरीली चालें।।
जिसके संकेतों पर तज निज धर्म हवा डोली।
पनघट लगे सूखने ऐसी गर्म हवा डोली।।

चातक लगा पुकार कि फिर से स्वाति मेघ छाये,
जो धरती को जीवन का आश्वासन दे जाये।
अभिमानी मुँहज़ोर हवा के दावे कर झूठे,
विकट तपन में घहरा करके अमृत बरसाये।।
क्योंकि छेड़कर पनिहारिन का मर्म, हवा डोली।
पनघट लगे सूखने ऐसी गर्म हवा डोली।।

* * *

कब तक

अधरों से वंशी दूर रहे,
स्वर जीने को मजबूर रहे,
कब तक सरगम के बिना राग रह पायेगा।
कब तक यह मौन, तपस्या करता जायेगा।।

कोई हलचल थी नहीं सिंधु के पानी में,
छू गई चन्द्र की किरणें भरी जवानी में।
स्पन्दित कर वह बैरागी को चली गयीं,
तूफ़ान दे गयीं जाते हुए निशानी में।।

हर शाम लौटकर आती हैं,
सारी निशि फिर बतियाती हैं,
उर–सागर कब तक साथी साथ निभायेगा।
कब तक यह मौन तपस्या करता जायेगा।।

श्रृंगार शान्ति का करें हवा और चिनगारी,
पतझर में महके और अधिक ही फुलवारी।
तनहाई में चहकें कोयल सी स्मृतियाँ,
यह जाने किसके स्वागत की है तैयारी।।

यह धुवाँ कब तलक छायेगा।
कब तक गुबार छट पायेगा।
कब तक कविता के पथ उजियाला आयेगा।
कब तक यह मौन तपस्या करता जायेगा।।

* * *

प्रतिबन्ध न स्वीकारो

रोशनी नहीं तुमसे देखी जाती,
क्यों सूरज के नजदीक़ चले आये।
जो खुली हवा से भी भयभीत रहे,
उनको झंझावातों में ले आये।।

मेरा कोई अनुबन्ध न स्वीकारो।
कोई अभीष्ठ सम्बन्ध न स्वीकारो।
जो लगा दिये थे, मेरी साँसों पर,
वे अनुमोदित, प्रतिबंध न स्वीकारो।।
मैं क्या स्वीकारुँ क्या परित्याग करुँ,
कोई मुझको भी आकर समझाये।।

चर्चा मत करो हमारे भावों की,
अधरों पर मेरा नाम नहीं लाओ।
मैं आँसू का वंशज हूँ आँखों से,
मेरा अस्तित्व धरा पर बिखराओ।।
मुझ पर थोड़ी सी पीड़ा संचित है,
कोई आकर इसको भी ले जाये।।

अपना दर्पन क्या तुमको दिखलाऊँ,
तुमको अपनी छवि की पहचान नही।
तुम ध्यान कहाँ तक दोगे प्रियतम पर,
जब तुमको अपनेपन का ध्यान नहीं।।
मैं जैसा भी हूँ, पश्चाताप नहीं,
मुझको कोई जीना मत सिखलाये।।

* * *

मन पागल है

जबसे तुमने तुलसी के चौरे पर रखा दिया,
तबसे मन कितना पागल है कोई क्या जाने।।

कितने सर्वनाम थे जो अब तक निष्काम रहे,
एक दृष्टि में वे सब तेरे–मेरे नाम हुए।
ईश्वर की पूजा से जितने शब्द बचे तुमसे,
चुपके–चुपके मेरी ख़ातिर मूक प्रणाम हुए।।

होठों पर लाने से पहले नाम कपूर हुआ,
तबसे यह प्यासा बादल है कोई क्या ज़ाने।।

आशा के अमृत ने मुझको जीवन दान दिया
एक किरन की ख़ातिर लड़ते सारी रैन गयी।
भोर हुई कल्पना रुपहली होकर उतर पड़ी
कल्पवृक्ष से जुड़ी प्रीति की कविता लता नयी।।

मेरे सर की दोपहरी को तुमने थाम लिया,
तबसे तन आँचल–आँचल है कोई क्या जाने।।

वैसे तो सागर की अब तक कोई थाह नहीं,
रत्नाकर को रत्नों की कोई परवाह नहीं।
जिसकी ख़ुश्बू अन्तर तक को गन्धित करती है,
मीत 'सुमन' को छोड़ किसी दूजे की चाह नहीं।।

भेद गया कोई प्रवाल के सीने को जबसे,
तबसे उर घायल–घायल है कोई क्या जाने।।

हाथों में हथकड़ी लाज की पैरों में बेड़ी,
काँधे पर है बोझ प्यार का उर में कोलाहल।
धैर्य चित्त में सपनों में कुछ टूटी तस्वीरें,
प्राण तुम्हारी यह छवि लेकर आई है हलचल।।

मौन निमंत्रण ने जबसे बाँधा है प्राणों को,
यह जीवन पायल–पायल है कोई क्या जाने।।

* * *

एक किरन

मावस में अकुलाये प्राणों को,
अनबोली एक किरन छेड़ गयी।

अवसर का अंजन दे पाये क्या,
आँखों में दूरियों की रेत है।
लेकिन कुछ गीली सी पीड़ा की,
पलकों को एक छुअन छेड़ गयी।।१।।

पहले ही अक्षर से पूजा है,
पुस्तक का परिचय बस एक हैं।
मंदिर में मंत्रों के स्वर लहरे,
चिन्तन को एक चुभन छेड़ गयी।।२।।

भादों की रातों का वृन्दावन,
यमुना के जल में कोलाहल है।
अलसाये तट को सपनीली सी,
यादों की एक पवन छेड़ गयी।।३।।

* * *

पीड़ा सोती है

सिरहाने सपनों का आकाश धारे,
मेरी पीड़ा सोती है सोने दो।

हँसता है चंदा उसको हँसना है।
डसती है रातें उनको ड़सना है।
स्मृतियों का यह नगर अलौकिक है,
दो यार रोज़ तक इसमें बसना है।।
तपती धरती को पावों तले करे,
इस राही की मंजिल तय होने दो।।

चातक क्या कहता है यह मत पूछो,
सागर क्यों बहता है यह मत पूछो।
झरने के नीचे भी कोई प्राणी,
प्यासा क्यों रहता है यह मत पूछो।।
भीतर सागर में चढ़ती लहरें हैं,
लहरों में आतुर तृषा डुबोने दो।।

कितने बन्धान थे भोले जीवन के,
इसलिये हृदय का खग निर्बन्ध हुआ।
जितना ही भावों को स्वच्छन्द किया,
उतना पिंगल से आवृत छन्द हुआ।।
इन निपट विरोधी अर्थों के काँधे,
छंदों की गठरी मुझको ढ़ोने दो।।

* * *

रैन भर गीत जगाऊँगा

तुम आँखों में भर लेना बिखरे स्वप्न,
मिलन की आस, अनबुझी प्यास,
रैन भर गीत जगाऊँगा
मैं बैठ कल्पना रथ पर सपनों में आ जाऊँगा।

धीमा–धीमा सा दर्द उठे अँगड़ाई में।
हल्की–हल्की सी चुभन लगे पुरवाई में।
तपती–तपती सी छुअन सेज तन पर छोड़े,
खो जाये निंदिया तारों की अमराई में।।

तुम प्राणों पर लिख देना मेरा नाम,
सांवरी रात, हृदय की बात,
प्रात तक दीप जगाऊँगा
मैं बैठ कल्पना रथ पर सपनों में आ जाऊँगा।।

जब मचल–मचल पायल जाये वीराने में,
जब खिसक–खिसक आँचल जाये अनजाने में।
सोये प्रश्नों को छेड़ जगाये, सूनापन,
जब आये नहीं हृदय अपने समझाने में।

तुम भावों पर रख देना अल्पविराम,
मुक्त परिवेश, अधखुले केश,
स्नेह से मैं दुलराऊँगा।
मैं बैठ कल्पना रथ पर यादों में आ जाऊँगा।।

तुम बंधे जगत के बंधन की सीमाओं में।
तुम छिपे लाज के अवगुंठन के गाँवों में।
मैं दूर पपीहे का संकल्प उठाये हूँ,
रहते हैं आकुल प्राण तुम्हारे पावों में।।

तुम अधरों से छू देना मेरा गीत,
व्यथित सा भाल, अश्रु की माल,
तृप्ति के सुमन चढ़ाऊँगा।
मैं बैठ कल्पना रथ पर सपनों में आ जाऊँगा।।

* * *

तुम्हें भला लगता हो

रोज–रोज सपने में आना,
मिलने से पहले खो जाना
शायद तुम्हें भला लगता हो।।

मैंने अपनी अभिलाषा के, सारे सूत्र लपेट लिये हैं।
मन के पंक्षी ने भी अपने, भीगे पंख समेट लिये हैं।।

फिर–फिर सोये भाव जगाना,
मन को अनायास उकसाना,
शायद तुम्हें भला लगता हो।।

पुस्तक के पृष्ठों पर अंकित केवल पीड़ा की परिभाषा।
बिना पढ़े ही शांत हो गयी, मीत तुम्हारी हर जिज्ञासा।।

केवल आमुख को सहलाना।
संवेदन का भ्रम उपजाना।
शायद तुम्हें भला लगता हो।।

जीवन की सरिता में बहते, दीपों का जलना क्या जलना।
आशाओं के अंशुमाल ने, छोड़ दिया जब नित्य निकलना।।

जुगुनू सा प्रकाश दे जाना।
गीत पूर्णिमाओं के गाना।
शायद तुम्हें भला लगता हो।।

कितनी और प्रतीक्षा करते, आखिर थके पाँव छाया की।
कुछ तो सीमायें होती हैं, साँसों पर ठहरी काया की।।

सम्बन्धों का जाल बिछाना,
प्राणों को परतंत्र बनाना।
शायद तुम्हें भला लगता हो।।

* * *

ऐसा बन्धन बाँधा है

ऐसा बन्धन बाँधा है आहत प्राणों में,
यह उमर मीत दिन दूनी बढ़ती जाती है।।

मुरझाये फूलों में फिर से, लाली भरदी।
पंखुरियों पर छवि की सुगंधि अंकित कर दी।
माला की माला फिर से नयी लगी लगने,
बस एक अश्रु की आत्मकथा हँसकर धर दी।।

ऐसा जीवन रोपा भावों की धारा में,
हर लहर मीत दिन दूनी बढ़ती जाती है।।

अर्चना बन गयी, अक्षर–अक्षर की काया।
साधना हो गयी शब्दों की शीतल छाया।
वन्दना हो गये वाक्य तुम्हारे आने से,
आराध्य स्वयं ही तुम जानो अपनी माया।।

ऐसा दर्शन रक्खा साँसों की पुस्तक में,
हर नज़र मीत दिन दूनी बढ़ती जाती है।।

* * *

मन का चकोर क्या करे

अन्जलि में चांदनी भरे. वक्त के अँगार खा रहा,
मन का चकोर क्या करे।

सरगम को जितना ही साधा।
ग़म जितना गीतों में बाँधा।
वंशी की पीड़ा क्या जाने,
कोरे आदर्शों की राधा।।
साँसों में रागिनी भरे, अधरों पर मौन गा रहा,
घायल हर पोर क्या करे ?

मतवाली हिरनी सी आंखे,
संयम की तोड़ती सलाखें।
उपवन की कलियाँ कुम्हलाई,
धरती पर झरती हैं पांखे।।
नयनों में यामिनी भरे, पलकों पर नशा छा रहा,
पूरब का भोर क्या करे ?

अलसायी पुरवा यूँ डोले,
चुपके से जाने क्या बोले।
बैठा है द्वार पर पुजारी,
मंदिर के दरवाजे खोले।।
अन्तर में कामिनी भरे, सपनों के देश जा रहा,
घन्टों का शोर क्या करे।
भीतर का चोर क्या करे ?

* * *

किसको सुनाऊँ

गीत मैं किसको सुनाऊँ ?

बधिर निज अन्तःकरण है।
अश्रु वाला व्याकरण है।
व्यथा की भाषा अकिंचन,
और कागज़ प्रीति– प्रण है।।

भोर की पहली किरण का,
मैं किसे चंदन लगाऊँ।।

मौन मुझको डस रहा है।
स्वार्थ ताने कस रहा है।
प्रीति का यह दीप मेरा
आँधियों में बस रहा है।।

स्नेह के बिन शुष्क बाती,
कब तलक इसको जलाऊँ।।

प्यास पहरे में पड़ी है।
कर वचन की हथकड़ी है।
झील जैसी तृप्ति मुझसे,
युगों अन्तर से खड़ी है।।

या बुझा दूँ वर्तिका को,
या शलभ सा छटपटाऊँ।।

बहुत घायल तन हिरन है।
जल चुका विश्वास वन है।
अब निराशा की लुकाठी,
के सहारे रुग्ण मन है।।

अब नहीं कोई कि जिसकी,
याद के सपने सजाऊँ।।
गीत मैं किसको सुनाऊँ ?

* * *

है छलावा विश्व

प्राण तोड़ो छुद्र कारा।

आग नफ़रत की, हृदय तरु– को जलाये जा रही है।
चातकी नैराश्य की, इस शून्य घर में गा रही है।
हर तरफ गहरा अँधेरा, और गहरा हो रहा है।
एक भी नव रश्मि पथ में, अब नहीं दिखला रही है।।

रोक दो अब श्वास धारा।
प्राण तोड़ो छुद्र कारा।।

भय नहीं खाया कभी भी तीव्र झंझावात में जो।
तनिक भी विचलित नहीं था, समय के आघात मे जो।
कण्टकों में, पावकों पर,और दुर्गम घाटियों में,
बढ़ रहा था गीत गाते, गहन काली रात में जो।।

प्रीति बिखरी जीव हारा।
प्राण तोड़ो छुद्र कारा।।

सृष्टि सारी अर्थ की भाषा निरन्तर बोलती है।
आस्थाओं में वितृष्णा का हलाहल घोलती है।
आत्मा समझा जिसे वह मात्र भौतिक यातना थी,
प्यार को लेकर, तुला पर स्वार्थ के, अब तोलती है।।

त्याग है जर्जर बिचारा।
प्राण तोड़ो छुद्र कारा।।

स्वप्न के स्वर्णिम महल, कितने घिनौने लग रहे हैं।
भावना के भाल पर, झूठे ढ़िठौने लग रहे हैं।
था अटल विश्वास जिन पर, मंदिरों के देवता वे,
त्यागकर संवेदना, असहाय बौने हो गये हैं।।

है छलावा विश्व सारा।
प्राण तोड़ो छुद्र कारा।।

* * *

स्वप्न – निर्झर

मत झरो अब स्वप्न– निर्झर।

कठिन गिरि अवरोध बन कर, पथ तुम्हारे आ खड़ा है।
यह तुम्हारा सलिल, निर्मम पत्थरों से ही लड़ा है।
तुम इसे भी धूल समझे, यह तुम्हारा बोध भ्रम है,
आततायी यह तुम्हारी शक्ति से ज्यादा बड़ा है।।

स्वार्थ का पर्याय बर्बर।
मत झरो अब स्वप्न– निर्झर।।

एक गिरि गलकर तुम्हें यदि जन्म देता क्या हुआ तो।
मदिर मंद समीर तुमको प्राण देता क्या हुआ तो।
वह तुम्हारी प्रीति के उत्तुंग हिमगिरि का प्रणय था,
दे तुम्हें गति, कुछ नही प्रतिकार लेता क्या हुआ तो।।

सामने शोषक निशाचर।
मत झरो अब स्वप्न–निर्झर।।

मित्र यह गायन तुम्हारा आर्त स्वर का रूप लेगा।
यह निठुर पाषाण तुमको कर अकिंचन झील देगा।
गति तुम्हारी शान्त होगी लय तुम्हारी मौन होगी,
सिन्धु तक बहना तुम्हारा स्वप्न यह साथी मिटेगा।।

तत्थ्य हैं सारे उजागर।
मत झरो अब स्वप्न–निर्झर।।

प्यार की भाषा नहीं पाषाण ने समझी कभी भी।
फूल की गरिमा नहीं नादान ने रक्खी कभी भी।।
बाँसुरी का स्वर नहीं भाता कभी भी आँधियों को,
समय है सँभलो अभी तुम, समय है सँभलो अभी भी।।

अन्त है वर्ना विषमतर।
मत झरो अब स्वप्न निर्झर।।

* * *

याचना रक्खो कुँआरी

और कितनी पीर बोलो,
झेल सकते हो पुजारी।

त्याग की, अभ्यर्थना की, हर परीक्षा में सफल हो।
जो रचा विधि ने, अमरता, से वही उत्कर्ष पल हो।
सत्य हो, पर शिव सरीखा मित्र बनना ही पड़ेगा,
बहुत सम्भव है तुम्हारे, वास्ते दारुण गरल हो।।

सुन्दरम् की चाह लेकर
यदि चले हो स्वप्नचारी।
और कितनी पीर बोलो
झेल सकते हो पुजारी।।

सीढ़ियों पर मंदिरों की कब न दुःख तुमको मिला है।
क्या कभी भी देवता पर फूल मुरझाया खिला है।
तुम रहे बस ध्यान के धोखे, अंधेरे में सिसकते,
हर तरफ ही एक माया का भयावह सिलसिला है।।

यह छलों की चमक तुम
समझे तमिस्रा की अहारी।
और कितनी पीर बोलो
झेल सकते हो पुजारी।।

मूर्ति को देखो तनिक, वह छत्र कंचन चाहती है।
दे नहीं सकती कभी कुछ, त्याग पावन चाहती है।
मंद मुस्काने लिये, वह सर पटकना देखती है,
आँसुओं का अर्ध्य, पीड़ाओं का चन्दन चाहती है।।

दे सको देदो मगर निज
याचना रक्खो कुँआरी।
और कितनी पीर बोलो
झेल सकते हो पुजारी।।

बंद लोचन कर लिए तुमने भला यह क्या तमाशा।
भक्ति का जल मत पिलाओ, है अधर भोली पिपासा।
है यही वैराग्य तो वैराग्य लेकर क्या करोगे,
प्रीति के कर में निराशा, स्वप्न के घर में कुहासा।।

और कितने युग रहोगे
तुम भिखारी के भिखारी।
और कितनी पीर बोलो,
झेल सकते हो पुजारी।।

* * *

मैं अकेला हूँ नहीं

देख री रजनी मेरे आँगन अकेली मत उतर।
मैं अकेला हूँ नहीं विश्वास कर।।

मेरी आँखों में असंख्यों दीप आशा के जले हैं।
रक्त के कण–कण, प्रणय की ज्योत्सनाओं में पले हैं।
क्या हुआ उर में हजारों दर्द है तूफ़ान भी हैं,
श्वास में मेरी सदा विश्वास के उपवन फले हैं।।

तू नक्षत्रों से रुपहली मांग भर।
मैं अकेला हूँ नहीं विश्वास कर।।

गीत कितने छटपटाते सत्य के ध्रुवकाल में हैं।
चिन्तनों के विहग कितने वासना के जाल में हैं।
छन्द हैं हर रोम में हर तन्तु में हैं गीत बसते,
चिर प्रतीक्षा के अनेकों लेख इस कंकाल में है।।

हैं अभी अवरोध कुछ उन्माद पर।
मैं अकेला हूँ नहीं विश्वास कर।।

मेरे आँगन में चतुर्दिक मौन सन्नाटे खड़े।
चिन्ह कितने ही पगों के द्वार–देहरी पर पड़े।
वायु में तिरते विलोको स्वप्न के बहुरूपिये,
जिस तरफ भी दृष्टि डालो, शान्त दावानल पड़े।।

तू जरा सा और गोरी सज संवर।
मैं अकेला हूँ नहीं विश्वास कर।।

चाहता मैं कब कि चन्दा सुन्दरी तू साथ में ला।
चाहता अमृत कलश लेकर न अपने हाथ में आ।
लग न जाये कलुष तेरे बस यही डर है मुझे,
घर न कोई हो, तुझे तब लूँ अकेले में बुला।।

है अभी हर ओर ही उपहास का डर।
मैं अकेला हूँ नहीं विश्वास कर।।

* * *

नैना भर–भर आते हैं

जितना ज्यादा स्मृतियों से हम कतराते हैं।
ये नैना भर–भर आते हैं।।

मेरे आदर्शों ने मुझ पर यह अहसान किया।
जिसको पूजा उसने पूजा का अपमान किया।
इतने झुके रूह भी अपनी कई जगह टूटी,
हर सपने ने, विवश मौन हो, विष का पान किया।।

अब तो ऐसा हुआ कि अमृत से घबराते हैं।
ये नैना भर–भर आते हैं।।

आरोपों से भरी कहानी लिखें किस क़लम से।
खुशी–खुशी यारी कर बैठे बेहिसाब ग़म से।
छन्दों के गण बदल दिये, व्याकरण बदल डाली,
और चाहती जाने क्या, है यह क़िस्मत हम से।।

कांटों को ही फूल समझकर कदम बढ़ाते हैं।
ये नैना भर–भर आते हैं।

आखिर कब तक छलें स्वयं को शकुनि दांव से हम।
एक ओर है क्रोध प्यार का, दूजी ओर अहम।
अपनी सांसों को अधरों से कब तक दूर रखें,
कब तक प्राणों की वंशी से विलग रखें सरगम।।

किससे गिला, प्रश्न तो यूं ही आते–जाते हैं।
ये नैना भर–भर आते हैं।

ये दोराहा है इसमें से एक राह अपनी।
काट न एकता कोई तन से स्वयं बाँह अपनी।
करना पड़ा यही तो फिर क्या करना शेष रहा,
अब बनने को रही उम्र भर नयी चाह अपनी।।

दुनियाँ से लेकर प्रमाण यह मन बहलाते हैं।
ये नैना भर–भर आते हैं।

* * *

न दे पाये

मेरी आँखों को अश्रु दिये मैं उपकृत हूँ,
साँसों को कोई भी सम्बन्ध न दे पाये।।

याचक की देने वाले से क्या शर्त भला,
अनुबन्धों को कोई अनुदान नहीं मिलता।
जो माथा झुक जाता है किसी विवशता में,
उसकी आस्थाओं को सम्मान नहीं मिलता।।
मेरे उपवन को दिये वायु के झोंके पर,
झोंकों को कोई मदिर सुगन्ध न दे पाये।

मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारों पर सौ गीत लिखे,
दिल की अमराई को अभिव्यक्ति न दे पाया।
आशक्त रहा मैं ऐसी मोहक कविता का,
जिसके कर में अपनी आशक्ति न दे पाया।।
तुमने मेरे हर सूनेपन को आहट दी,
लेकिन आहट को कोई छन्द न दे पाये।।

यह जीवन एक अपरिचय की पुस्तक जैसा,
खुद पढ़ा नहीं तुमने भी दृष्टि नहीं डाली।
इसकी संज्ञा का भी अभिप्राय नहीं समझा,
होली पर दीप जलाये कहकर दीवाली।
क्षण–क्षण भ्रम को अपना सानिध्य दिया तुमने,
पर पावों को कोई सौगन्ध न दे पाये।।

* * *

सौगन्धों से बंधा जीवन

सौगन्धों से बंधा हुआ जीवन जीते–जीते
छलनी हुआ हृदय संयम का विष पीते–पीते।।

कुशल क्षेम लेकर सावन सी पाती आई है।
पंक्ति–पंक्ति में छुपा–छुपा बरसातें लाई है।
रखूँ वक्ष पर पत्थर, कैसे मौसम के डर से,
शब्दों में दुखियारी आहों की परछाई है।।

अब इस मौसम से कोई सम्बन्ध न पालूँगा।
कितने सुमन गये कुचले, कितने आँसू रीते।।

अन्तर सब जाने है कितना सहना पड़ता है।
आँसू पर मुस्कान सजाकर रहना पड़ता है।
कोई दोष नहीं यदि मंजिल पाने से पहले,
ऋतुपति को पतझर का अनुचर कहना पड़ता है।।

लेकिन कब तक सहन शक्ति को मैं दुलराऊँगा।
कितने दिन सपनो की बाज़ीगरी दिखा बीते।।

सिर्फ विवशता कहती मेरे भावों तक जाना।
कुछ दिन और प्रतीक्षा की पुस्तक पढ़ते जाना।
माना अपना रक्त लगाकर मांग संवारी है,
मंत्र साधना से पहले होठों तक मत लाना।।

जन्मों की चादर में यदि खरोंच है अवसर की,
सुई चुभो मत लेना, जीवन! तुम सींते–सींते।।

दोषी मत कहना

मेरी इन अधीर सांसों को दोषी मत कहना,
बहुत दिनों से मलय पवन का साथ नहीं पाया।

भटका था ऋतुराज अभी तक रेगिस्तानों में।
इसका सब सौन्दर्य लुटा जलते तूफानों में,
जीवन था अवशेष किसी अज्ञात प्रतीक्षा में,
आज आ गया वह भूला फिर से उद्यानों में।।

इन पगलाये मधुमासों को दोषी मत कहना,
बहुत दिनों से चन्दन वन का साथ नहीं पाया।।

श्रद्धा ने भावना – भवन में घोर निशा पायी।
कहीं कोई भी खिड़की इसको दृष्टि नहीं आई।
एक ज्योति वरदान दे गया मौसम बैरागी,
प्रीति पकड़कर हाथ उसे अपने घर ले आई।।

इन आहत से अहसासों को दोषी मत कहना,
बहुत दिनों से स्नेह – किरन का साथ नहीं पाया।।

शब्द हुए आकाश कल्पनालोक, हुई धरती।
आस विवश थी संयम के संत्रासों से डरती।
धरती के कपोल की लाली जब इसने देखी,
उतर पड़ी तूलिका चित्र में नये रंग भरती।।

इन शब्दायित आकाशों को दोषी मत कहना,
बहुत दिनों से मुक्त कथन का साथ नहीं पाया।।

पाटल के सुमनों में अब मकरन्द नहीं बांधो।
होने दो उन्माद और स्वच्छन्द नहीं बांधो।
भाषा अलंकरित करने की बात न मैं करता,
भोली कविता में व्याकरणी छन्द नही बांधो।।

इन थोड़े से आभासों को दोषी मत कहना,
बहुत दिनों से मन ने मन का साथ नहीं पाया।।

* * *

जिसे सौंपा है मेरा प्यार

किया जिससे तुमने अनुबन्ध,
दिया जिसको मेरा नव छन्द।
अभी तक मेधा से अज्ञात,
प्रीति का आगामी स्कन्ध।।

प्रभो यह मृदु भावों का हार,
उसे कर दूँ सप्रेम बलिहार।
जिसे सौंपा है मेरा प्यार।।

जुही के अलसाये से फूल
महकती वसुन्धरा की धूल।
प्रकृति की सरिता दुःख की नाव,
जा रही बिना पाल मस्तूल।।

तुम्हारी किरणों से सुस्नात।
तमिस्रा पर करती प्रतिघात।
साधना ने यह जाना नहीं,
किस तरह बीती काली रात।।

कहाँ है ऊषा का श्रृंगार।
जिसे सौपा है मेरा प्यार।।

घुट रहा वाल्मीकि का श्लोक।
दृष्टि पर मर्यादा की रोक।
हुआ घायल गालिब का शेर,
न मिल पाया मनचाहा लोक।।

प्रदर्शन में डूबा हर पोर।
सुन रहा वाह–वाह का शोर।
किंतु भयभीत प्राण का दीप,
छुपाये तल में तम का चोर।।

कहाँ है अन्तर का उजियार।
जिसे सौंपा है मेरा प्यार।।

कौन है वह जिसको अवलोक।
लुप्त हो अन्तर्मन का शोक।
पिघल जाये संशय की बर्फ,
चेतना में फैले आलोक।।

श्वास का पूरा हो संघर्ष।
कहाँ है वह अदृश्य उत्कर्ष।
रक्त में गूंज उठे संगीत,
कौन वह जिसका पा स्पर्श।।

कहाँ वह नूपुर की झनकार।
जिसे सौंपा है मेरा प्यार।।

छलावों में अपनी पहचान।
भावना समझ न पाये दान।
उदधि में आँसू के दो बूँद,
खोजता फिरे व्यर्थ इन्सान।।

न मिल पाती चन्दन की छाँव।
रेत से जूझ रहे हैं पाँव।
अपरिचित देश, अपरिचित भूमि,
क्या हुआ अगर चतुर्दिक गाँव।।

कहाँ वह मेरा लघु संसार।
जिसे सौंपा है मेरा प्यार।

कि जिसके अन्वेषण में श्वास।
कर रही है अनुदिन उपवास।
उफनती सरिताओं के बीच,
खड़ी है जिसकी खातिर प्यास।।

अजाने में गीतों की आह।
जिसे छूने की करती चाह।
कौन उपजाता आठो याम,
प्राण में पीड़ा, मन में दाह।।

कौन है वह पारिधि सुकुमार।
जिसे सौंपा है मेरा प्यार।।

असंगतियों का नीर उलीच।
सो गया कोई आँखे मीच।
हुआ विस्मृत वह पहला राग,
दूसरा रहा हृदय को खींच।।

कल्पना से भी रहती शेष।
प्रीति की वह प्रतिमूर्ति विशेष।
कामना की कविता का पुष्प,
कौन है जिसका इष्ट 'नरेश'।।

कौन वह गन्धित पुष्पाकार।
जिसे सौंपा है मेरा प्यार।।

अधर पर अस्फुट नाम पवित्र।
हृदय पर केवल रेखाचित्र।
सुन रहे जिसकी आहट प्राण,
अगोचर अभी कौन वह मित्र।
हटालो प्रभु तम का प्रतिबंध।
तुम्हें इस पागल की सौगन्ध।
उसे आने दो मेरे पास,
दूर मत रखो पुष्प से गंध।।

याचना लो मेरी स्वीकार,
मुझे दो वह मेरा आधार।।
कि जिसको वाणी रही पुकार।
जिसे सौंपा है मेरा प्यार।।

* * *

अपने प्रियतम से बोल ज़रा

विरहाकुल मन, पल–पल उलझन,
तेरी सुधियों का द्विरागमन।

 री तोड़ कुटिल मर्यादायें
वाणी का बन्धन खोल ज़रा।
अपने प्रियतम से बोल ज़रा।।

कृत्रिम गुलदस्तों में कोई,
कलिका गुलाब की खिली नहीं।
खातों में बड़े कुबेरों के,
सम्पदा प्रीति की मिली नहीं।।
तूने पाया वह जीवन–धन,
महा–महा उठा स्वप्निल यौवन।

हिचकिचा न अपने निर्णय से,
अब चुका प्रीति का मोल ज़रा।।

जिनकी आस्थायें रहती हैं,
संदेहों की अँगनाई में।
उनके भावों की पिकी कभी,
गा सकी नहीं अमराई में।

तू भी करले इसका चिन्तन,
सरगम पर डाल नहीं बन्धान

निर्भीक प्रेम का यशोगान,
अपने अधरों पर तोल जरा।।

तेरी सुधियों का हाथ थाम,
जीवन के गिरि पर चढ़ता है।
तुझको क्या ज्ञात नहीं यह मन,
उपनिषद् प्रीति का पढ़ता है।।
भर रहे नयन, झर रहे नयन,
सुख का जीवन से निर्वासन।

उठ निकल प्रेम की बगिया में,
फिर मलय पवन सी डोल जरा।

* * *

उन त्यौहारों का क्या होगा

तपती उपवन की गली–गली,
मुरझाई है हर कली–कली।
फूलों के चेहरे झुलसे हैं,
ऐसी ज़हरीली हवा चली।।

जो ठहरे हैं मौसम के घर उन त्यौहारों का क्या होगा?
लेकर बसन्त जो आते थे, उन पतझारों का क्या होगा?

भ्रमरों का गाना बन्द हुआ।
घायल – घायल मकरन्द हुआ।
तितली के सारे रंग उड़े,
आतप इतना स्वच्छंद हुआ।।

ऐसे में कोयल वाले उन, मीठे नारों का क्या होगा?
सुकुमारी संध्या, और उषा की मनुहारों का क्या होगा?

विहगों का कलरव शान्त हुआ।
हर यायावर विश्रान्त हुआ।
मन कहाँ लगाये तब कोई,
जब हर मेला एकान्त हुआ।।

जो सूनापन हर लेते थे, उन उद्गारों का क्या होगा?
जो कदम–कदम पर गाते थे, उन बन्जारों का क्या होगा?

पत्तों पर मधुमय छंद लिखे।
हर कोंपल पर अनुबंध लिखे।
कोई बादल सा मीत मिले,
जो धरती पर आनन्द लिखे।

वर्ना इस दरके दर्पन के, शुचि श्रृंगारों का क्या होगा?
जो प्रीति नहीं दे सकी कभी, उन उपहारों का क्या होगा?

* * *

फिर से सो गया

बेचकर संवेदना के गीत,
शहर का अस्तित्व फिर से सो गया।

खो गया है शान्ति का सुख चैन।
अश्रु पूरित आस्था के नैन।
हर तरफ साम्राज्य है तम का,
बहुत लम्बी हो गयी है रैन।।

सोखकर पीयूष धरती का,
सूर्य का स्वामित्व फिर से सो गया।।

फिर रहा है मौन सड़कों पर।
शून्यवत् हैं पत्थरों के घर।
बन्द अन्दर से हुए सब द्वार,
कांपते हैं साधना के स्वर।।

फाड़कर भ्रातत्व के प्रस्ताव,
निर्दयी मनुजत्व फिर से सो गया।।

स्वार्थ की सरि में नहाया काल।
है कहीं ठहरा हुआ भूचाल।
आंधियों का हो रहा आभास,
कँपकँपाये चेतना का थाल।

पोंछकर फिर प्रीति का सिंदूर,
शपथ का अमरत्व फिर से सो गया।।

इस भयावह दौर का परिणाम,
कौन पायेगा अनय को थाम।
जाग करुणा की प्रभा के दींप,
त्याग अपना अहितकर विश्राम।।

सौंपकर खुद को समय के हाथ,
प्रेम का अपनत्व फिर से खो गया।।

* * *

आवाहनो के मंत्र

लेखनी है प्रेम के कचनार की,
और गोरोचन तुम्हारी आस का
सुखद–सुधि के भोज़ पत्रों पर,
लिख रहा आवाहनों के मंत्र–
तुम कहीं भी हो तुम्हें आना पड़ेगा।।

थक गया मैं स्वप्न में मनुहार करके,
बुझ गया, अनुभूतियों से प्यार करके।
देह की भाषा उपेक्षित कर चला था,
भावना से हृदय का श्रृंगार करके।।

भूल थी संवेदना की और तुम,
भूलकर मुझको जगत के पास में,
ओढ़ भौतिक कामना की चूनरी,
लिख रही हो साधनों के मंत्र

बेरुखी पर मीत पछताना पड़ेगा।
तुम कहीं भी हो तुम्हें आना पड़ेगा।।

आज मैंने लोक की छोड़ी प्रथायें,
आज तोड़ी शोक वाली श्रृंखलायें।
आज मेरी दृष्टि में तुम मात्र तुम हो,
चन्द्रमा की बांध लीं सारी कलायें।।

प्राण की गोदावरी के तीर,
प्रीति का संकल्प ले अभिराम
और माला मिलन की कर में,
जप रहा आलिंगनों के मंत्र

सांस के स्वर पर तुम्हें गाना पड़ेगा।
तुम कहीं भी हो, तुम्हें आना पड़ेगा।।

* * *

गन्ध का झरना

हर ओर हवा में सम्मोहन डोले,
कोई उर को अनुबंधित करता है।
जिस तरफ तुम्हारी आहट सुनता हूँ
उस ओर गन्ध का झरना झरता है।।

जीवन की सारी थकन विलुप्त हुई
तुमने आँचल की छाया दे दी है।
टूटे दरके दर्पण जैसे मन को,
नूतन निर्मल सी काया दे दी है।।

तुम हँसो कि कोई पाटल खिल जाये,
या प्राणों में उल्लास उतरता है।।

हमने तो अपनी पूजा के बदले,
ईश्वर से कोई कोष न मांगा था।
लेकिन आँखों ने अपनी चाहत में,
तुमसे पहले संतोष न मांगा था।।

तुम मिले कि जैसे जीवन धन पाया,
अभ्यंतर में आलोक विचरता है।।

यह रूप कि जैसे चंदन के सत में,
चांदनी मिलाकर विधि से रचा गया।
उर के ठहरे–ठहरे से सागर में,
स्पर्श तुम्हारा हलचल मचा गया।।

अब तुम हो और दृष्टि है, धड़कन है,
हर ओर प्रीति का रंग बिखरता है।।

मेरे यायावर सपनों के जग में,
हर पल अपने होने का वचन भरो।
मैं पोर–पोर डूबा हूं सुधियों में,
तुम भी मुझमें खोने का वचन भरो।।

इस महामिलन की ऋतु में ठगा–ठगा,
हर क्षण छन्दों की रचना करता है।
जिस तरफ तुम्हारी आहट सुनता हूँ,
उस ओर गन्ध का झरना झरता है।।

* * *

निशा वन की यह निर्जनता

आँखों का सन्यास,
मिलन की वेला का वनवास,
और शब्दों की निर्धनता,
यह प्राणों का दिया स्नेह बिन, कब तक मीत जले,
श्वास यह कितना और चले।।

यह पुरवा अधरों की दूनी तपन बढ़ाती है।
बिन मौसम कोयल आमंत्रण गीत सुनाती है।
भीतर बाहर रीतेपन की हँसी खनकती है,
यादों की शहनाई सोई पीर जगाती है।।

घायल करे विदेश,
न मिल पाये कोई संदेश
हृदय मरूथल की उर्वरता,
सपनो की फुलवारी कब तक फूले और फले
श्वास यह कितना और चले।।

पल–पल करके यह यौवन के दिन कट जायेंगे
अनचाहे अक्षर अधरों पर कभी न आयेंगे।
कितने याचक गीत क़लम के द्वारे तक आये,
बोलो, याचक–याचक के हाथों क्या पायेंगे ।।

नौका के मस्तूल
नाव की व्यथा न जाना भूल,
नदी के जल की पावनता,
पापी पुरवा के हाथों से कब तक और छले,
श्वास यह कितना और चले।।

सपने इतनी दूर नहीं जो छुये न जा सकते।
इतने कोमल गीत नहीं जो अधर न गा सकते।
यह माना इकले पूजा का थाल नहीं उठता,
हम दोनो मंदिर तक इसको लेकर जा सकते ।।

बुला रहा अनुराग,
छेड़ दो फिर से दीपक राग,
निशा वन की यह निर्जनता,
इकला हृदय शाम से ही सूरज के साथ ढ़ले।
श्वास यह कितना और चले।।

* * *

प्रीति का चुम्बन

शबनमी प्रीति का चुम्बन,
हमारे भाल पर धर दो।
ये मन की बात है साथी,
तपन की बात है साथी।।

बहुत चुपचाप सूरज,
यामिनी की गोद में सोया।
रूपहला चाँद भी अपने,
गगन की याद में खोया।।

दहकती सी शिराओं में
प्रणय की चांदनी भर दो,
ये तन की बात है साथी,
मिलन की बात है साथी।।

तुम्हारे रूप की किरणें,
लटों से आयें छन–छन के।
तुम्हारे हाथ का कंगन,
हमारी पीठ पर खनके।।

अमावस है हृदय में,
प्यार देकर पूर्णिमा कर दो,
ये छन की बात है साथी,
सपन की बात है साथी।।

झील के गात पर फिर हम,
अजन्ता को उतारेंगे।
तुम्हारे आइने में जिन्दगी,
अपनी निहारेंगे।।

करुँ मैं प्रश्न आँखों से
तुम आँखों से ही उत्तर दो,
नयन की बात है साथी,
वचन की बात है साथी।।

* * *

तुम्हारी ओर देखूँ

पास बैठो गुनगुनाओ
झील से आँखे मिलाओ,
मैं तुम्हारी ओर देखूँ।।

रात बीती दूरियाँ थीं,
दृष्टि, की मजबूरियाँ थीं।
केश खोलो, कुछ न बोलो,
लाज से कुछ लाल हो लो।
मैं सुनहली भोर देखूँ।।

स्वप्न कोई याद आये,
देह, में उन्माद आये।
धड़कनों के पास आओ,
बस अधर पर मुस्कराओ,
तृप्ति का हर पोर देखूँ।

प्यास से यदि पवन खेले,
गन्ध कोई गोद लेले।
बाजुओं में सिमट जाओ
वक्ष पर वंशी बजाओ।
सृष्टि का हर छोर देखूँ।
मैं तुम्हारी ओर देखूँ।।

* * *

अगला जनम सही

यह जनम नहीं तो अगला जनम सही,
कोई तो जन्म अवश्य मिलन देगा।

अपनी अर्चना सैकड़ों जन्मों की,
जब तक ईश्वर यह सृष्टि चलायेगा।
तब तक मेरे स्वर तुम्हें पुकारेंगे,
जब तक पपिहा धरती पर गायेगा।।

यह सूर्य अभी जो तपन दे रहा है,
कल यही प्यास को पूर्ण शमन देगा।

तुम एक बार एकाकी दर्पण में,
देखना भाल पर कुंकुम रच करके।
सौभाग्य स्वयं तुमको दुलरायेगा,
सुख भी जाएगा भला कहां बचके।।

तुमको वैरागिन जो लिखाता आया,
कल वही तुम्हें सुकुमार सपन देगा।
यह जनम नहीं तो अगला जन्म सही,
कोई तो जनम अवश्य मिलन देगा।।

* * *

प्रीति बहुत बदनाम हो गयी

बरसाने में सुबह हुई थी,
वृन्दावन में शाम हो गयी।
रात रही मथुरा में, मेरी
प्रीति बहुत बदनाम हो गयी।।

धड़कन ने भी बहुत डराया।
सांसों ने कितना समझाया।
यह ऐसी अन्तर में बैठी,
इसको कुछ भी समझ न आया।।

इस पगली के पीछे अपनी,
सब पूँजी नीलाम होगयी।।

आयी नहीं कभी चतुराई।
चैन नहीं छण भर भी पाई।
दुनियां के सौ बाद्य छोड़कर,
इसको केवल वंशी भायी।।

मुरलीधर पर ऐसी रीझी,
पोर-पोर नीलाम हो गयी।।

सारे रिश्ते नाते तोड़े।
रंग महल चौबारे छोड़े।
देखा नहीं कभी भी जिसको,
जाती उससे नाते जोड़े।।

अपनी संज्ञा भूल चुकी है,
सर्वनाम के नाम हो गयी।।

युगों–युगों की यह तरसी है,
हर पीड़ा में भी सरसी है।
कभी हँसी तो कभी झूमकर
मेरे प्राणों पर बरसी है।।

कभी दिखी राधा की छवि सी,
और कभी घनश्याम हो गयी।

* * *

अभिलाषा का दोष

जो दोष हमारी अभिलाषा का है,
कैसे वह भोलेपन के नाम लिखें।

यह वही दृष्टि थी जिसको पूजा था,
यह वही दृष्टि थी जिसे निखारा था।
यह वही दृष्टि थी जिसको अम्बर से,
मैंने बस तेरे लिये उतारा था।।

वह दृष्टि तुम्हारे नाम चढ़ा दी है।
कैसे दूजे दर्पन के नाम लिखें।

वह श्वास कि जो बस तुम तक जाती थी,
वह श्वास कि जो तुम पर इतराती थी।
वह श्वास जिसे कोई संदेह न था,
अविराम प्रीति से मिलकर आती थी।

वह श्वास तुम्हारी माला लिए फिरे,
इसको किसके जीवन के नाम लिखें?

जो क़लम क्रांति के गीत जगाती थी,
वह एक फूल के हाथों छली गयी।
जिसका कोई दूसरा विकल्प न था,
वह शरण तुम्हारी बरबस चली गयी।।

यह क़लम क्या कहें इसका भी दिल है,
कैसे जलते आँगन के नाम लिखें?

मेरी वाणी मंदिर की गरिमा थी,
जिसको कोई श्रृंगार नहीं भाया।
जबसे तुमने इसको स्पर्श दिया,
तबसे इसको संसार नहीं भाया।।

यह वैरागिन अब भी वैरागिन है,
इसको किसके कंगन के नाम लिखें?

सारे सपने जीवन के नाम लिखें,
या फिर सांसे कंचन के नाम लिखें।
तुम चाहे जहाँ इन्हें नीलाम करो।
सौगातें किस सावन के नाम लिखें?

होठों तक मेरा नाम न तुम लाये,
यह पीड़ायें किस मन के नाम लिखें।।

* * *

नहीं पाया प्राणों का प्यार

वचनों की स्वीकृति मिली किंतु,
मन का स्वीकार नहीं पाया।
दैहिक सत्कार मिला केवल,
प्राणों का प्यार नहीं पाया।

भीगे–भीगे अहसासों पर,
उल्लास ओढ़ आना तेरा।
अनकही व्यथा के अधरों पर,
धीरे से मुसकाना तेरा।।

मिल गया मुझे वह अनायास,
जिस पर अधिकार नहीं पाया।।

उर का चन्दन वन सूख गया,
पर नयनों में कस्तूरी थी।
खिल–खिल करते इस अभिनय में,
पीड़ा की क्या मजबूरी थी।।

अपनापन सा कुछ मिला किन्तु,
अपना संसार नहीं पाया।।

इनकार हथेली पर मिलती,
यह सच था हृदय टूट जाता।
सागर के ज्वार ठहर जाते,
कोई सर्वस्व लूट जाता।।

यह कैसा आत्म समर्पण था,
जिसने आकार नहीं पाया।।

तुम जैसा शायद हो न सकूँ,
रोना चाहूँ, पर रो न सकूँ।
ऐसा अब कुछ भी पास नहीं,
जिसको दुनियां में खो न सकूँ।।

मन ने वह महल बनाये हैं,
जिनका आधार नहीं पाया।
दैहिक सत्कार मिला केवल,
प्राणों का प्यार नहीं पाया।।

* * *

यदि विश्वास छला?

यह तो दुनियाँ के नाते हैं।
कुछ आते हैं, कुछ जाते हैं,
तुमने भी यदि विश्वास छला तो भावुकता मर जायेगी।

कोई मिलता है धन लेकर
कोई बस केवल तन लेकर,
कोई आता है जीवन में,
अनचाहा खालीपन लेकर,

सब अपनी–अपनी गाते हैं,
अपनी ही व्यथा सुनाते हैं,
तुमने भी यही किया साथी तो आकुलता मर जायेगी।

है कहीं प्यार का बौनापन,
हैं कहीं स्वार्थ से भरे नयन
कुछ को बस समय बिताना है,
जैसे–तैसे गुज़रे जीवन।

कुछ केवल अश्रु गिराते हैं।
कुछ मर्यादा समझाते हैं।
तुमने भी यही दिया मुझको, तो आतुरता मर जायेगी।

कितने सुमनों में गन्ध नहीं,
है गन्ध अगर, मकरन्द नहीं,
उन शब्दों का क्या करें भला,
जिनसे बन पाये छन्द नहीं

कुछ खोते हैं, कुछ पाते हैं,
कुछ अनसुलझे रह जाते हैं।
तुमने भी रचा रहस्य अगर, तो कोमलता मर जायेगी।

है मिला हृदय को प्रेम सघन,
तुम पर है अमित रूप का धन,
श्रृंगारों से अभिषेक हुआ,
तुमने पाया मादक तन–मन।

कुछ ऐसे में इतराते हैं।
पूजा को भी ठुकराते हैं।
तुमने भी जिया मुझे यूँ ही तो मादकता मर जायेगी।

* * *

तुमने वह दरपन दिया

मुझको अब तक यह ज्ञात न था
मैं भी हूँ, आखिर मैं भी हूँ,
तुमने वह दर्पन दिया, कि खुद का भान हुआ।।

सौ–सौ सम्बन्ध निभाये पर
औरों का ही अस्तित्व मिला।
दुनियाँ भर के सम्बोधन थे,
पर कहीं नहीं स्वामित्व मिला।
मुझको अब तक यह ज्ञात न था
मेरा भी है व्यक्तित्व यहाँ,
तुमने वह बन्धन दिया, कि सच आसान हुआ।।

कितनी ऋतुयें आयीं घर में,
लेकिन जीवन अनछुआ रहा।
आकाश असीमित था फिर भी,
मन तो पिंजरे का सुआ रहा।
मुझको अब तक यह ज्ञात न था,
होती है सुरभि हवाओं में,
तुमने वह सावन दिया, कि उर उद्यान हुआ।।

मैं लिये प्रेम के सात सिंधु
घूमता रहा मरूथल–मरूथल।
हर नदी मिली सूखी–सूखी,
हर बादल था छल का बादल।
मुझको अब तक यह ज्ञात न था,
है कहीं प्रीति की सरिता भी,
तुमने आलिंगन दिया, कि निज पर मान हुआ।।

जन्मों की थकन और तृष्णा
जिस अमृत की अभिलाषी थी।
जिसके बिन, चाहे–अनचाहे,
जीवन में सिर्फ उदासी थी।
मुझको अब तक यह ज्ञात न था,
तुम भी हो इसी प्रतीक्षा में,
तुमने अपनापन दिया, कि अमृत पान हुआ।।

* * *

गया वर्ष

गया वर्ष तोड़ गया पत्थर कुछ मील के।
पथ में बिखेर गया कांटे करील के।।

रक्त सने हाथों में फौलादी वासना।
भीगी सी पलकों में प्राणों की याचना।।
दैवी कृपाओं से टूट गया आदमी।
अपनी ही बाहों से छूट गया आदमी।।

तत्व हुए शामिल हैं मानव में चील के।
गया वर्ष तोड़ गया पत्थर कुछ मील के।।

घर की ही देहरी में घर का विरोध है।
खिड़की पर परदों को निष्कारण क्रोध है।।
तालों ने खोल दी है घर की तिजोरियाँ।
अलमारी करती है कपड़ों की चोरियाँ।।

टूट गये शीशे हैं, बुझती कंदील के।
गया वर्ष तोड़ गया, पत्थर कुछ मील के।।

लजवन्ती पलकों पर मदिरा का भार है।
दैहिक लिप्साओं में जलता श्रृंगार है।।
थोथे सम्बोधन हैं झूठों के, देश में,
फिरती दुर्घटनायें नूतन परिवेश में।।

सूख गये नीरज हैं सुविधा की झील के।
गया वर्ष तोड़ गया पत्थर कुछ मील के।।

नूतन के स्वागत में इतनी तैयारियाँ।
मंच बना, रौंद गयीं, केशर की क्यारियाँ।।
फिर भी सम्मोहन कुछ दीखता नवीन में।
एक नाग चमकीला और आस्तीन में।।

याद आये सपने फिर हमें पंचशील के।
गया वर्ष तोड़ गया पत्थर कुछ मील के।।

* * *

श्रीमान नये साल जी

रो–धो के बीत गया रक्त सना साल।
जाते ही सौंप गया सौ–सौ भूचाल।।
आप भी पधारिये श्रीमान नये साल जी।
आप भी दिखाइये नये–नये कमाल जी।।

गोलियों की धाँय–धाँय गूँज रही कान में।
आबादी बढ़ रही है आज श्मशान में।।
बचपन है तरस गया सड़कों पर खेलना।।
सीख रहा चौथापन तानों को झेलना।।

कितने ही राष्ट्र यहां बनते फिलहाल।
खींच रहे जनता की नेतागण खाल।।
हम सब तो जीते है अब भी बहरहाल जी।
आप भी पधारिये श्रीमान नये साल जी।।

ऐसा कुछ रोग लगा घर के संविधान में।
देहरी से दरवाजे लड़ रहे मकान में।।
झूम–झूम गाते हैं नीति के लुटेरे।
खुले आम रिश्वत हैं ले रहे सबेरे।।

विक्रम के काँधे पर सोया वेताल।
हर सवाल सौंपता है दूसरा सवाल।।
हर घर में दीख रहा छोटा भोपाल जी।
आप भी पधारिये श्रीमान नये साल जी।।

लाज लूटते मिले हैं संस्कृति के सारथी।
नववधुयें फूँक रहे आज के महारथी।।
आरती अजान ने निकाल लीं कटारियाँ।
मंच बना रौंद गईं केशर की क्यारियाँ।।

माथा टिकाने से फूट गया भाल।
महँगाई तोड़ गयी जीवन की ढाल।।
आओ एक दूसरे का लेलें हाल चाल जी।
आप भी पधारिये श्रीमान नये साल जी।।

आप हैं दयालु देव कुछ तो तरस खायेंगे।
सांसों पर नये–नये कर नहीं लगायेंगे।
भूखों की हँसी नहीं विश्व में उड़ायेंगे।
रास नहीं लाशों के वक्ष पर रचायेंगे।।

कुर्सी पर मला गया इतना गुलाल।
पीले सब हो गये हैं देशी प्रवाल।।
आपका ही जल्वा अब, आपका जमाल जी।
आप भी पधारिये श्रीमान नये साल जी।।

* * *

अगवानी नये साल की

सर्दीली रातों में काँपती हवायें।
प्राणों में गूंज रही प्रीति की ऋचायें।।
किरणें बटोर नौनिहाल अंशुमाल की।
कर लें अगवानी नये साल की।।

आओ फिर चलते हैं संगम की ओर।
भावों की रेल–पेल, लहरों का शोर।।
रेती पर बैठ दोनों, धूप में नहायें।
भीतर की लहरों को गीतमय बनायें।।

दे दें फिर सपनों को नैनों की पालकी।
करलें अगवानी नये साल की।।

बाहों में फूलों से भर लें पल–छिन।
भूल जायें कांटों से बीत चुके दिन।।
नयी कल्पनाओं से नयी सर्जनायें।
अधरों से अधरों पर अमृत छलकायें।।

श्वेत–श्याम जल में दे अंजली गुलाल की।
करलें अगवानी नये साल की।।

धारा पर लिख डालें सांसों के गीत।
धड़कन की वंशी से भर दें संगीत।।
तोड़ दें दिशाओं की लौह श्रृंखलायें,
आगत के स्वागत में आरती सजायें।।

सुधियाँ सब दीप बने, पूजा के थाल की।
करलें अगवानी नये साल की।।

* * *

डॉ. नरेश कात्यायन देश विदेश के हिन्दी जगत में सुख्यात हैं। इनके एक खण्डकाव्य ''महात्मा जटायु'' ने मुझे विशेष रूप से प्रभावित किया है। अनन्तर इनके गीत संग्रह ''कोहरे में डूबा शहर'' का मैंने आद्योपान्त पारायण किया है। इसमें वामन जैसी सामर्थ्य वाले बावन गीत हैं, विशुद्ध खड़ी बोली में सुशिल्पित, सरस एवं सुगेय। भाव—सम्पदा, कत्थ्य तथा शिल्प की धनी ये गीत रचनायें छन्दबद्ध कविता की वापसी का स्पष्ट संकेत हैं।

पीड़ा मन के किसी कोने में थी जो कलावतीत्व ग्रहण करते—करते व्यष्टि से समष्टि तक पहुंची। ये वियोगजन्य है तथा संयोग के सुखातिरेक की परिणति भी। कभी—कभी इसने आक्रोश को भी अभिव्यक्ति दी है, आक्रोश जो मानवीय मूल्यों के विघटन के विरोध में है, सामाजिक विद्रूपताओं तथा मानव जाति के चिन्तन के अड़गुड़हेपन के परिष्कार की दिशा में उद्यत है। ये रचनायें पाठक के मानस में एक सुनहरी सुबह के प्रति ललक की उत्स भी हैं। ये पारम्परिक संयोजना में आबद्ध होते हुए भी नवगीत की ताज़गी की ज्वलन्त उदाहरण हैं।

कृति ''कोहरे में डूबा शहर'' हिन्दी काव्य जगत की अमूल्य निधि होगी। भाषायी सहजता, सरलता तथा सुसम्प्रेषणीयता के कारण इसके गीत जन—जन का कण्ठहार बनेंगे, ऐसा मेरा विश्वास है।

- कौशलेन्द्र पाण्डेय

परिचय

५ जनवरी १९६० को जन्में डॉ० नरेश कात्यायन (मूल नाम रामनरेश मिश्र) को साहित्यिक अभिरुचि अपने पिता स्व० श्री श्यामसुन्दर लाल मिश्र तथा धार्मिक संस्कार माता श्रीमती कलावती देवी से प्राप्त हुए। प्रारम्भिक शिक्षा जन्मस्थान शंकरपुर राजा, मोहमदी, जनपद लखीमपुर खीरी में हुई। सेवा–भाव से प्रेरित होकर एम०बी०एच० किया और साहित्य के प्रति प्रेम ने साहित्य रत्न, साहित्य वाचस्पति तथा शिक्षा विशारद की उपाधियाँ प्राप्त करने हेतु प्रेरणा स्रोत का कार्य किया। काव्य सृजन की निरंतरता की प्रेरणा संघर्षों की सहचरी कवयित्री पत्नी श्रीमती पुष्पा 'सुमन' के सानिध्य से परिपुष्ट हुई।

'महात्मा जटायु' खण्ड काव्य (उ०प्र० हिन्दी संस्थान के जयशंकर प्रसाद नामित पुरस्कार से पुरस्कृत) एवं उ० प्र० साक्षरता निकेतन द्वारा दो नुक्कड़ नाटक 'सोंटादास लंगोटादास तथा मकान गवाह है'–प्रकाशित। डॉ० नरेश कात्यायन द्वारा सृजित प्रभूत साहित्य जो अभी प्रकाशन के पथ पर है : मेवाड़ की महाराणी, साध्वी सुमित्रा (दोनों खण्ड काव्य), झाला की कृपाण, विदेह तुलसी, राधिका फागुन–फागुन ह्वे गयी (तीनों आख्यायिकायें), अक्षरों का उत्सव (नयी कविताओं का संग्रह), क्रान्ति–यज्ञ (वीर रस की कविताओं का संग्रह), ख़त तेरे नाम लिखे (नज़्म संग्रह), लिख हथेली पे मेरा नाम (ग़ज़ल संग्रह), ये स्वर भी तुम्हारे (मुक्त छंद संग्रह), फुहार और मनुहार (वर्षा–होली एवं कृष्ण भक्ति पर ललित निबन्ध संग्रह) मनाओ [illegible] ला की दीवाली (उ०प्र० शासन द्वारा पुरस्कृत गीत, ग़ज़ल संग्रह), चुहिया का [illegible] दिन (बाल कविता संग्रह)।

देश एवं विदेश के कई नगरों की तीस से अधिक साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संस्थाओं द्वारा– नई पीढ़ी के सर्वश्रेष्ठ ओजस्वी कवि, जनकवि, राष्ट्रीय कवि, आधुनिक दिनकर, काव्य शार्दूल, पंडित प्रताप नारायण मिश्र स्मृति सम्मान, राष्ट्रभाषा गौरव सम्मान, साहित्य शिरोमणि, मजरूह सुल्तानपुरी हिन्दी सेवी सम्मान, बागेश्वरी सम्मान एवं भूषण सम्मान से सम्मानित। देश के अखिल भारतीय कवि सम्मेलनों में प्रखर वीर रस के कवि एवं मंच संचालक के रूप में स्थापित। इंग्लैण्ड के कई शहरों में आयोजित कवि सम्मेलनों में एवं बी.बी.सी. लंदन से काव्यपाठ। राज्य कर्मचारी साहित्य संस्थान की वार्षिकी 'उपलब्धि' के प्रधान सम्पादक, भारतीय साहित्य सेवा संस्थान के अध्यक्ष तथा अखिल भारतीय मंचीय कवि परिषद के संयोजक।

— *सुधीर निगम*
कानपुर

सम्पर्क सूत्र
[illegible] राजकीय कालोनी, सेक्टर–२१, इन्दिरा नगर, लखनऊ
दूरभाष : ०५२२–२३८१६९१(का०), ७१५८४० (नि०) फैक्स : २३८१७८